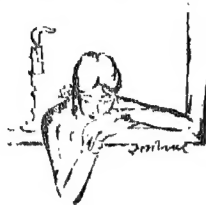


आँसू पानी हैं



रॉबिन शॉ 'पुष्प'

नव साहित्य प्रकाशन दिल्ली—६

प्रथमावृत्ति
१९६०
तीन रुपए

प्रकाशक : —नव साहित्य प्रकाशन बंगलो रोड, दिल्ली-६
मुद्रक :—शुक्ला प्रिंटिंग एजन्सी द्वारा, नूतन प्रेस, दिल्ली ।

माँ को

—'पुष्प'

यह सोलह

अकेली कोठरी; उदास रहा करती। जब मेरे कदम चौखट के भीतर जाते, दीवारें घूरने लगतीं। मुझे ऐसा अनुभव होता, उन्हें मुझ से जन्म-जन्मान्तर की शिकायतें हैं। मैं कांपते हाथ से बत्ती रोशन करता, फिर बुझा देता।······ अन्धेरा घुप; कुछ राहत मिलती। नंगी दीवारें पलक से गुम हो जातीं।

परन्तु आज यह पुराना रंग मेरे पल्ले नहीं था। १९५७ पूरा हुए, कई महीने खिसक गये। मगर, चाहकर भी, मैं कैलेंडर लाने में असमर्थ रहा······और आज येन-केन-प्रकारेण एक नहीं, चार लेकर आया हूँ। अब सूनी सी दीवारें हसेंगी— उनकी प्रतारणा दूर हो जायगी। मैंने एक-एक कर चारों को टाँग दिया।

रात गलने लगी। मगर मेरी आंखों से नींद हवा। मैं बराबर उन चार अतिथियों को निहारने लगा। देखते ही देखते, अजाने ही पलकें लगने लगीं...अधलगी निंदिया, फिर कुछ कुम-सुम सुनाई पड़ी। मैंने साँस हलकी करदी, कोठरी में सूना पन तैर गया। कुछ फुस-फुसाँहट···! सुना, तस्वीरें आपस में कह-सुन रही थीं।

एक तस्वीर बोली—

"तुम लोग तो मुझे देख ही रही हो । यह नाव है, उस पर मैं बैठी हूँ । और, यह फूल का गुच्छा···उन्हें बहुत भाते थे ये सलोने फूल , फिर ये धुंधली सी लालटेन, यही तो मुझ राह-भूली को राह दिखाती है ।

"—वे कितने अच्छे थे । परन्तु उनसे मेरा परिचय ?··· ओह ! वह भी एक कहानी है...उस दिन अजाने ही तूफान आ गया, नैया ऊब-डूब करने लगी...तभी न जाने किस अपरिचित बाँह ने सहारा दिया। मैं चिपकी रही । तूफान थम गया, मगर उफान ? वे नित्य ही संझा गए, इस धार निकल आते । मैं फूल संजोकर रखती, वे देखकर खिल जाते । मैं उनकी माँझिन, वे मेरे माँझी...।"

—तस्वीर कहते-कहते थम गई । साँसों में दर्द सिमट गया । हमारी कहानी तूफान से शुरू हुई, तूफान में दब गयी ।

उस रात मैं प्रतीक्षा की घड़ी तक रही थी; दूर से तैरती छाया नजर आई । सच कहती हूँ, सूने चमन में कलियाँ चटक गईं, बहार मुस्करा उठी । मगर तभी जब वे बीच में ही थे, आसमान कयामत बन गया...बिजली तड़प गई और तूफ़ान! मेरी आँखों के सामने नाव बैठने लगी । उनके खुले हाथ, शायद फूल का गुच्छा मांग रहे थे । मैं खड़ी रही...खड़ी रही, और मेरी आंखों के सामने ही तूफान से लिखी कहानी, तूफान से मिट गई ।" उसकी साँस भारी होने लगी ।

"आज भी मैं बराबर रात में, इन सुनसान लहरों पर फूल बिखेर जाती हूँ ।" वे निश्चय ही, आकर इन्हें चुन ले जाते होंगे...उन्हें ये फूल बहुत भाते थे । मैं अभागिन, मेरी आँखों के सामने वे डूब गये और मैं देखती रही ।" पहली

तस्वीर की आँखों में आंसू छलक आये।

दूसरी तस्वीर ने हमदर्दी प्रकट की—"आँसुओं में सनी जिन्दगी ही हमारी मुस्कराहट है। एक तुम ही नहीं बदनसीब हो दीदी...

तुमने तो उनका प्यार भी पाया। गर्म बाहुओं की तुम्हें अनुभूति भी हुई, सांस की खुशबू मिली। परन्तु मैं, मैं तो स्वयं के लिए अभिशाप बन कर रह गई। विवाह की प्रथम रात्रि...मुझे अच्छी तरह स्मरण है...मैं लाख अरमान समेट बैठी थी, वे आयेंगे और घूंघट उठायेंगे...में लजाकर दुहरी भला कैसे बन पाऊँगी ? उनका स्पर्श, मैं गदगदाने लगी।·· परन्तु हर सुबह के पीछे रात की काली छाया रहती है। मैं प्रतीक्षा की दुल्हन, मगर मालूम हुआ उन्हें साँप डस गया। बहार ने खिजां को सीने में कस कर समेट लिया। मैं व रात में ही विधवा बन गई।" वह सिसकने लगी।

अन्य तस्वीरों ने देखा। वह पहली ही रात की तरह आज भी सजी बैठी थी। सजा पलंग, सजी वह...मगर सूरत पर तैरती उदासी, और हाथ की चूड़ियाँ पैरों के निकट चूर-चूर पड़ी थीं...बाल खुले। हाय ! अभागिन सुहाग रात !!

तीसरी तस्वीर उसकी किस्मत पर दो आँसू गिरा कर कहने लगी—"बहन ! मेरी छाती के अन्दर कितना ग़म पलता है। तुम क्या जानो ? मैं भी तो कम दुखी नहीं। मगर जिन्दगी की दीवारों को इन्हीं आँसुओं से भरती रही हूँ। अब अपने को इस योग्य बना लिया है कि उफ तक नहीं करती।

रोज़ शाम को मैं पहाड़ियों पर निकल जाती। वहाँ की चीजें भातीं। मैं घंटों नज़ारों में डूबी रहती। उस दिन मौसम

में खुमारी थी। घूमती-घूमती काफी दूर निकल गयी···उस अपरिचित पहाड़ी पर कदम अजाने ही सहम गये। सामने किसी की कब्र थी। थक तो काफी गई थी, पल-दो-पल के लिए बैठ रही। जाने कब तलक बैठी रही। मैं अधसोयी थी, तभी किसी की आवाज़ जगी—'पाक हज़रत! रहम कर, मेरे आँसुओं में गीत पिरो दे...यूं तो दर्द सहा नहीं जाता। रहम! रहम!!' मैं चौंक गई। पलट कर देखा, कोई अल्हड़ सा था। आयु—जवान था तो मैं क्या करूँ, खूबसूरत भी—मेरी बला से! कब्र पर आ धमका वह...मैंने टोका—'मुर्दों से क्या माँग रहे थे? गीत?' और मैं हंसी। ...'अरे! मरे लोग गाया नहीं करते।' एकाएक आगे बढ़कर उसने मेरे ओठों पर हाथ रख दिया—'यह पीर का मज़ार है, ऐसा नहीं कहते। यहां जो माँगते हैं, मिल जाता है।' उस स्पर्श से मुझे बेचैनी सी होने लगी। मैं उसके हाथ झटक कर बोल उठी—'शर्म नहीं आती...छूते!' उसे गलती खटक गई, वह जाने लगा।...जाता है तो जाये, यहां बाँध किसने रखा है। मैं घूम गयी। जब उसके कदम की आखरी आहट भी गुम हो गयी तो जाने मुझ कैसा अकेलापन लगने लगा। मुझे लगा, मैं वर्षों की साथ रही अकेली नहीं रह सकती। मैंने निश्चय कर लिया—कल ही घर लौट जाऊँगी। चूल्हे में जाय ये पर्वत-भ्रमण।

मैं लौट गई। मगर मेरी नींद न जाने कहाँ खो गई? लाख चाहती, पलक लग जाये मगर वह अल्हड़पन जो आंखों में डूबा था, सोने कहां देता। मर्दों के सामने तनकर चलने वाली मैं, जाने आज क्यों झुकी जा रही थी? मैंने सोचा

यह मेरी कमजोरी है। लाख मना कर, पलकें मूंद लीं फिर वही स्पर्श ! अधरों पर हाथ ले गई। मगर उसके हाथ थे कहाँ ? मेरा ही आंचल था... मेरा वहम ! अपनी हार के सहारे, रात आंखों में गुजर गई और रात के साथ घर लौट जाने की बात भी पिछल गई। शाम में फिर उस मजार की ओर चल दी। वह वहीं मिला। दिन बीतते गये मगर रंगीन होकर, मौसम मुस्करा कर हसीन हो गया। पहले मैं शाम ढले वापस लौट आती, परन्तु अब रात की गोरी चांदनी, बेड़ी सी पैरों में लग जाती, आने कहां देती थी जल्दी।

उस दिन मैं अपने को रोक न सकी। गीत, फिजां में डूब गये या फिजां गीतों में ...मैं कह नहीं सकती। केवल इतना भर याद है, मैं जो खोल कर गा रही थी। गीत के थमते ही देखा, वह नहीं था। मेरी निगाहें मजार से लग गयीं। पहले दिन की तरह ही वह कब्र पर अधझुका था... 'या पाक हज़रत ! आज मैं खुश हूँ, मेरे आंसुओं में गीत तैर रहे हैं। तेरी दया है बस।...शुक्रया !' मैं पास बैठ गई। उसने कहा—'देखा, मैं कहता था न...यहां मांगने से चीजें मिलती हैं। तुम भी जो चाहो, मांग सकती हो।'......'मैं नहीं मांगती, मुझे तो विश्वास नहीं...तुम्हीं मांग लो।' वह मज़ार के सामने फिर अधझुका बैठ गया। हाथ आकाश की तरफ उठे थे—'या मौला ! मेरी जिन्दगी में, नन्हीं के सिवा है कौन ? हज़रत ! इतनी दया कर, मेरी मौत तभी हो जब नन्हीं ये चाहे कि मैं मर जाऊँ......

'—धत् ! यह भी कोई मांगना में मांगना है। भला ! मैं क्यों तुम्हारी मौत चाहने लगी।'...और मैं चांदनी में

दौड़ने लगी। उसने मुझे पकड़ लिया—'नन्ही, तुम चांदनी में झलकते उस मज़ार के संगमरमर की तरह पाक हो, सफेद हो...' फिर कुछ रुककर उसने पूछा—'अच्छा ये बताओ तुम हो कौन ?' मैंने उसे यह कह कर टाल दिया कि कहानी बहुत लम्बी है इसीलिए पीछे बताऊँगी।...मगर वह पीछे कभी नहीं आया। और मुझे बिना उससे कुछ कहे, लौट आना पड़ा अपनी रियासत।

नाज़ों में पली...रेशम की कोमल कली, मेरी प्रत्येक इच्छायें पूरी की जातीं। अपनी ज़िद से ही मैं पहाड़ों पर गई थी। पिता अगर बड़े राजा नहीं तो छोटे में शंका ही न थी।

परन्तु घर लौटने पर पता चला, मेरे पिता का किसी ने खून कर दिया है। लोगों को शंका थी, उनके छोटे भाई (मेरे चाचा) ने ही उन्हें मारा, क्योंकि उनकी मृत्यु के साथ ही वे गद्दी के अधिकारी बन गये और साथ ही मेरी मां से विवाह भी कर लिया। ...मेरे आगे अंधेरा ही अंधेरा था... मैं कांप गई। जब अपने नये मित्र से दूर ही दूर रहा करती, खुशियां जाती रहीं। दिन गुजरते गये।...

उस दिन मां की साल-गिरह थी। आनन्द झूम रहा था। नृत्य बिखर-बिखर गया...कितनों ने नाचा, मैं भी नाची। आज पहली बार लगा कि मैं भी नाच सकती हूं, मैं तालियों में डूब गयी थी—गम कुछ हल्का लग रहा था। दर्द एक नशा है जो कदमों की लड़खड़ाहट से नहीं, सूरत से झलकता है...नाच समाप्त होते ही नये पिता ने कहा 'बेटी ! तू जो चाहे मांग सकती है, मैं देने से इनकार नहीं करूंगा। मैंने सोचा—मैं मांग ही क्या सकती हूँ, खुशियां पिता ले गये

और गम, वह तो खुद किस्मत ने दे रखा है। मैं मां के पास गई। दो पल खड़ी रही और फिर उससे लिपट गई––'मां तुम जो चाहो आज वही मांगूंगी। मां, तुमने बड़े प्यार से पाला है। आज मैं तुम्हारी खुशी मांगूँगी।'

मां ने पूछा—"फिरोगी तो नहीं ?"

"नहीं मां।"

"तो जा बेटी, उस कैदी का सिर मांग ले जो कैदखाने में बन्द है।"

"क्यों मां ?"

"इसीलिए कि वह कहता है कि मैं बदचलन हूँ, तेरे चाचा बदचलन हैं। उन्होंने तेरे पिता का खून किया है। बेटी ! वह लोगों को भड़काता है, मेरे मन की शांति छीन लेना चाहता है और तेरे चाचा उसे सज़ा भी नहीं दे सकते क्योंकि लोग उसके साथ हैं। वह ढोंगी उपदेशक बना है, मेरी खुशी छीन लेगा...।" क्रोध से मां कांपने लगी।

मैं वहां से लौट आई। नये पिता के साथ-साथ सभी लोग इस प्रतीक्षा में थे कि मैं क्या मांगती हूँ ! मेरी जबान खुली––"उपदेशक का सिर थाल में काट कर ला दिया जाये।"...खुशियों में मातम तैर गया।

"कुछ और मांग ले बेटी।" पिता ने कहा, लोगों ने मनाया।

"नहीं।" मैं अचल थी।

आज्ञा हुई। मैं खुश थी, आज मां के किसी काम तो आई कम से कम मां की खुशी ही लौटा सकी। थाल में कपड़े से ढंका हुआ सिर आया। मैं फुदकती हुई करीब गई।

मां को मैंने देखा, वह मुस्करा रही थी...मैं भी मुस्कुराने लगी। फिर मैंने झटके से कपड़े अलग कर दिये...मेरा रंग उड़ने लगा मुझे लगा, मैं बेहोश होकर गिर जाऊँगी। मेरी आँखों के सामने मजार घूम गया। वहां कोई अधझुका मन्नत मांग रहा था–"या मौला! मेरी जिन्दगी में नन्ही के सिवा है कौन? हज़रत! दया कर, मेरी मौत तभी हो जब नन्हीं ये चाहे कि मैं मर जाऊँ।" और फिर, 'धत्! यह भी कोई मांगना में मांगना है। भला मैं क्यों तुम्हारी मौत चाहने लगी।'...फिर चांदनी में दौड़ती हुई दो तस्वीरें...मैं कांपने लगी। ये उसी कल के पहाड़ी-अल्हड़ का सिर था, जो आज का उपदेशक था...

तीसरी तस्वीर सिसकने लगी। 'बताओ! मुझ से ज्यादा कौन बदकिस्मत है। मैंने अपने प्रेमी की मौत स्वयं मांगी... तुमने तो नहीं। हाय!' ...दोनों तस्वीरों ने देखा, एक लड़की सिर पर हाथ धरे बैठी है, बाल खुले हैं...मगर वह सजी है, चेहरे से गम झलक रहा है...सामने ही थाल में एक कटा सर है...खूबसूरत!

मैं पसीज गया। हवा का एक झोंका आया...कुछ सर-सराहट हुई, मेरी चादर परे सट गई। मैंने देखा, उड़ कर तीनों तस्वीरें चौथी तस्वीर के पैरों के निकट जा पड़ीं। कौतूहल जगा, चौथी तस्वीर क्या है! देखा, सूली पर लगे ईसा मसीह की तस्वीर थी। मुझे लगा, गम से घबड़ा कर तीनों, ईश्वर की छाया तले आ गई हैं।...आमीन!

प्रतिद्वन्द्वी



रात में जब राजेशनाथ भोजन पर बैठे तो पत्नी ने बात छेड़ी–'राकेश का पत्र आया है कि वह इस बार भी छुट्टियों में घर नहीं आयेगा, किसी मित्र के यहाँ जा रहा है।' भोजन का कौर उठाते हुए वे बोले––'अं...मगर वह घर क्यों नहीं आता?' आखिर उसे घरसे ऐसी क्या दुश्मनी है?'पत्नी ने जैसे नब्ज पकड़ ली, बोल उठी–'मैं तो कहते-कहते हार गयी, कभी तुम सुनो भी तो...राकेश को देखे पूरे साल लगने को आये।' दूसरे दिन ही बिलासपुर जाने का निर्णय करके वे भोजन से उठ गये।

गाड़ी बढ़ी जा रही थी। राजेश बाबू ने सोचा कि आखिर वे अब तक बिलासपुर से भागते क्यों रहे...डरते क्यों रहे...? अगर चाहते तो कब का बिलासपुर जाकर राकेश को लिवा लाते...! मगर,......तभी उनकी आंखों के सामने से अतीत हौले कदमों से गुजरने लगा......बीस वर्षों का पुराना बिलासपुर जवान हो गया और वे कांप उठे...

उस समय वे राजेश बाबू न हीथे...केवल राजू! २०-२२ की आयु के राजू ...बनारस के सुप्रसिद्ध वकील कैलाशनाथ के सुपुत्र––राजू को बी. ए. की परीक्षा देकर नतीजे की प्रतीक्षा थी। परन्तु...एक दिन सौतेली मां से अनायास ही

झगड़ा हो जाने पर वे घर से भाग निकले। किस्मत ने बिलासपुर तक आने की इजाज़त दी। रोटी की समस्या दिन प्रति-दिन बढ़ती ही गयी। जितने पास के पैसे थे, सभी चुक गये। तब हारकर...थककर...उन्होंने पान की एक दुकान में नौकरी कर ली। काम था, केवल रात को कोठों पर पान की गिलोरियां पहुंचाना। उन्होंने दिल को समझाया—कोई भी पेशा बुरा नहीं होता...सभी के अपने-अपने असूल होते हैं। पेशा एक दायरा है...घेरा है...! सच पूछिए तो बेइमानी भी एक पेशा है।... इसकी भी मान्यतायें हैं...सीमाएं हैं। फिर ये गिरहकटी तभी तक ठीक है, जब तक पेट भरे, लेकिन पेट के साथ-साथ जब जेब भरने लगे तो यह दायरा खत्म हो जाता है...सीमा समाप्त हो जाती है और वह पेशा न होकर चोरी हो जाती है।

फिर उन्हें स्मरण हो आया...उसी दूकान के सामने, कोठे पर रोज़ी रहा करती थी। कितनी मासूम...कितनी भोली...! वे जब-जब पान लेकर जाया करते, तो वह एक-टक गोरी नज़रों से उन्हें निहारा करती। न चाह कर भी वे उसकी तरफ आकृष्ट हुए। जाने क्यों, उन्हें ऐसा लगता कि जब वे देखा करते तो कलियां शर्म से कुछ और लाल हो जातीं... परिचय बढ़ा...बात बढ़ी...कहानी बढ़ी...

फूलों पर गालों की सुर्खी तैर-तैर जाती...।



रोज़ी करीबन अकेली ही थी। साथ में, बस यहीं कोई ३०-३५ वर्ष की महरी रहा करती थी। जब उनकी तबीयत

वहाँ खूब लगने लगी थी। दोनों घण्टों एक दूसरे को निहारा करते। दिन झूमने लगे...रातें मुस्कुरा उठीं...मौसम रंगीन हो गया। अब उनके अवकाश का क्षण, अधिकतर रोजी के सामीप्य में ही व्यतीत होता। फिर जिस दिन परीक्षाफल निकला और वे उत्तीर्ण हुए, उन्होंनें अपनी सारी कहानी कह सुनाई। तब वह सिसक कर कह उठी—'तुम भी अमीर ही निकले ..... धनी तो केवल सौदा भर करना जानते हैं......
मगर बीच में ही उसकी आंसुओं से माँग भर कर उन्होंने कहा था—'अब तो विश्वास आया पगली!' रोज़ी जैसे खिल पड़ी...कह उठी—'मैं लाख बाज़ारू ठहरी...बुरी ठहरी...पैसों पर गीत और मुस्कराहट बेचने वाली, मगर राजू! तुम्हारी कसम ये माँग तुम्हीं से भरवाऊंगी—बस एक तुम्हीं से!' तब उन्होंने कहा था—'बावली रोती है, मैं बी० ए० तो कर ही गया...दो वर्ष एम० ए० करने में लगेंगे। फिर मैं तुम्हें ब्याह कर ले जाऊंगा...दुलहन बनाकर, मेरा इन्तज़ार कर सकोगी न?' तब वह बोल उठी थी—'दो वर्ष क्या तुम्हारे लिए तो पांच साल ठहर सकती हूँ, राजू!'

मगर कौन किसके लिए ठहरा......समय किस के लिए ठहरा? और फिर उन्होंने रोजी को ठहरने ही कब दिया? रोजी मां बनने वाली थी और वे बापू। उस दिन सारे ज़ेवर देकर रोजी नें कहा था—'ये मेरी अब तक की पूँजी है... जीवन भर की अमानत है...इन्हें बेच आओ न! उन पैसों से काम चलेगा फिर अच्छा होकर तो......

मुहब्बत भी एक पेशा है। उसमें भी एक दायरा है। उस दायरे को पार कर जाने पर वो पेशा नहीं रहता...मक्कारी

और फरेब हो जाता है जिसका दूसरा नाम है—बेवफाई ! और हुआ भी वही । उस दिन, ज़ेवरों की चमक में उनका ईमान गुम हो गया । वे सारा सामान लेकर भाग निकले तब रोज़ी छूट गई थी—अकेली...निःसहाय ! समय नहीं ठहरा... वे नहीं ठहरे...

फिर उन्हीं जेवरों की बदौलत उन्होंने दूर गांव में एक आटे की मिल बैठाई । दिन-दुगनी-रात-चौगुनी, उन्नति देहरी पर नाचने लगी । क्रमशः वे आज कई मिलों के मालिक थे । पत्नी थी...पुत्र था—सुखद परिवार था । उन्होंने सोचा—'आखिर उन्नति क्यों न हो, उस धन में किसी मां की तमन्ना थी...किसी अबला का प्यार था और थी किसी वेश्या की पवित्र-आत्मा !'

गाड़ी रुक चुकी थी । अतीत के चित्र उड़ गये । आज उसी बिलासपुर की जमीन पर कदम रखते वे सकुचा रहे थे घबड़ा रहे थे । रात करीबन ग्यारह के होगी । वे चल पड़े...

पान की दूकान से उन्होंने सिगरेट खरीद कर सुलगाई । बाजार अभी तक रंगीन था । दूकान में एक पुरानी सी तस्वीर देखकर वे चौंक गये । उन्हें वह दिन याद आया—जिस दिन उन्होंने वह तस्वीर रोजी की ज़िद पर सिर्फ उसके लिए उठाई थी ।

जिस चीज़ की आदमी को लत नहीं रहती, उस पर चाह कर भी उसकी आंखें नहीं टिकतीं । मगर जिस नशा का आदी होकर वह उसे छोड़ देता है...और कभी अगर उस पर नज़र पड़ती है तो पहले वह उसे छुपी नज़रों से देखता है, फिर उसके निकट जाने की इच्छा जगती है और बाद में तो वह

नशा में डूब कर खुद नशीला हो जाना चाहता है ।...और वे सामने कोठे की तरफ बढ़ गये । पान वाला फुसफुसा उठा---'खुशनसीब हो बाबू ! जो रुपयों के पैरों से वहां पहंच जाते हो...हम तो बस देख भर लिया करते...।"



अन्तिम सीढ़ी पर कदम रखते ही आवाज आई---'आ जाइये न...।' वे भीतर गये । कमरे में धुंधली रोशनी थी । 'कहां हैं ?' उन्होंने पूछा । 'बुला दूँ ?' लगभग ५० साल की बुढ़िया बोली । 'बुलाने की आवश्यकता नहीं...या अल्लाह, जी, मैं खुद आ गई ।' किसी की मीठी आवाज हवा में डूब गयी । राजेश बाबू ने पलट कर उसकी तरफ देखा नहीं । 'दादी माँ! ये रुपये उस कालेजिया बाबू ने दिये हैं---रात यहीं ठहरना चाहते हैं । वह बेशर्मी से बोल गयी ।' बूढ़ी ने 'हाँ' काहकर जैसे मंजूरी दे दी । वह लड़की जाने लगी तभी राजेश बाबू नेकहा---'ठहरो! कितने रुपये हैं ?' 'पच्चास ।'... 'केवल पच्चास---मैं सौ दूँगा!' और इस बाजार में तो रुपयों की कीमत है जिधर का पलड़ा झुकेगा---उस तरफ रात की रंगीनियाँ खुशियां...झुकेंगी ! तभी नशे में डूबे किसी युवक की आवाज आई---'अभी...तक न...हीं आ...ई ?' और वह लड़खड़ाता हुआ वहां आ पहुँचा । रुपये लौटाती हुई लड़की बोली---'मैं मजबूर हूँ । इस सेठ ने मेरी कीमत सौ...' बीच में युवक बोल उठा---

'दो सौ'

'ढाई सौ' राजेशनाथ ने कहा ।

'तीन सौ' युवक की बोली थी ।

राजेश बाबू कांप गये । आज जीवन में पहली बार उनकी इतनी गहरी हार हो रही थी । वह भी एक नादान छोकरे से, जिसने शायद कोठों पर चढ़ना ही सीखा था । उन्होंने अपनी, सोने की घड़ी उतार कर रख दी । युवक कांप गया ।

हार कर जाते हुए प्रतिद्वन्द्वी को राजेश बाबू ने पलटकर देखा । वह सिर झुकाये, सीढ़ियां उतर रहा था ... वे सहम गये—ये तो राकेश था...उन्हीं का पुत्र राकेश—जिसने खत लिखा था कि...वे जल्दी से पलट गये, कहीं वह उन्हें देख न ले ।

राजेश बाबू ने बढ़ कर कीमत चुकाई । बुढ़िया चौंक गई—'कौन...राजू ?' राजेश बाबू ने बूढ़ी को ध्यान से देखा 'अरे ! ये तो रोजी की महरी है ।' 'तुम ?'...'हां, मैं हो ।' दबी जबान में बुढ़िया बोली—'तुम्हारे भाग जाने के बाद, जब रोजी ने खुद को जला कर अपनी कहानी खत्म कर दी तो मैंने उसकी इस आखरी निशानी को पाला...बड़ा किया '

राजेश बाबू को जैसे किसी ने जहर का प्याला पिला दिया ।...उनके सामने नीलामी की तस्वीरें घूम गयीं । अभी कुछ पहले, एक बाप अपनी बेटी को खरीदना चाहता था । एक भाई अपनी बहन के लिए बोली बढ़ा रहा था—महज *गन्दी वासनाओं की तृप्ति के लिए और वह बिक रही थी* रोटी के नाम पर...पेट के लिए !' वे पसीने से तर हो गये ।

और तभी एकाएक सीढ़ियाँ उतर कर वे तेजी से जाने लगे । लड़की भौचक सी अपने उस खरीदार को देख रही थी। उसकी समझ में कुछ नहीं आया । उसने पलट कर एक बार

दादी मां को देखा और दूसरे ही क्षण उसकी निगाहें उन खामोश पड़ी हुई वस्तुओं से लिपट कर जैसे कोई उत्तर खोजन लगीं---जो चीजें उसकी एक रात की कीमत थीं।...

'तीन सौ' युवक की बोली थी ।

राजेश बाबू कांप गये । आज जीवन में पहली बार उनकी इतनी गहरी हार हो रही थी । वह भी एक नादान छोकरे से, जिसने शायद कोठों पर चढ़ना ही सीखा था । उन्होंने अपनी, सोने की घड़ी उतार कर रख दी । युवक कांप गया ।

हार कर जाते हुए प्रतिद्वन्द्वी को राजेश बाबू ने पलटकर देखा । वह सिर झुकाये, सीढ़ियां उतर रहा था ... वे सहम गये––ये तो राकेश था...उन्हीं का पुत्र राकेश––जिसने खत लिखा था कि...वे जल्दी से पलट गये, कहीं वह उन्हें देख न ले ।

राजेश बाबू ने बढ़ कर कीमत चुकाई । बुढ़िया चौंक गई–'कौन...राजू ?' राजेश बाबू ने बूढ़ी को ध्यान से देखा 'अरे ! ये तो रोजी की महरी है ।' 'तुम ?'...'हां, मैं हो ।' दबी जबान में बुढ़िया बोली––'तुम्हारे भाग जाने के बाद, जब रोजी ने खुद को जला कर अपनी कहानी खत्म कर दी तो मैंने उसकी इस आखरी निशानी को पाला...बड़ा किया '

राजेश बाबू को जैसे किसी ने जहर का प्याला पिला दिया ।...उनके सामने नीलामी की तस्वीरें घूम गयीं । अभी कुछ पहले, एक बाप अपनी बेटी को खरीदना चाहता था । एक भाई अपनी बहन के लिए बोली बढ़ा रहा था––महज गन्दी वासनाओं की तृप्ति के लिए और वह बिक रही थी रोटी के नाम पर...पेट के लिए !' वे पसीने से तर हो गये ।

और तभी एकाएक सीढ़ियाँ उतर कर वे तेजी से जाने लगे । लड़की भौचक सी अपने उस खरीदार को देख रही थी। उसकी समझ में कुछ नहीं आया । उसने पलट कर एक बार

दादी मां को देखा और दूसरे ही क्षण उसकी निगाहें उन खामोश पड़ी हुई वस्तुओं से लिपट कर जैसे कोई उत्तर खोजन लगीं—जो चीजें उसकी एक रात की कीमत थीं।…

बाबलू

● ● ●

रात देर तक पादरी पीटर की खिड़की खुली रहती। वे झुक कर कुछ पढ़ते रहते...शायद बाइबिल। जब रात अधेड़ हो जाती, मोमबत्ती की उम्र चुकने लगती, तब वे धीरे से पुस्तक बन्द कर बाहर आ जाते। पहले एक बार, उनकी आँखे हाते में घूम जातीं; फिर गिरजे के क्रास पर थम जातीं। उन्हें लगता, जैसे क्रास ऊपर इंगित कर रहा हो—'धरती की माया में पड़ना व्यर्थ है। अपने लिये पुण्य बटोरो वही तुम्हारे लिए स्वर्ग में स्थान सुरक्षित रख सकेगा।'... फिर गिरजाघर को देखते, जो मरियम की तरह पवित्र था, एक बार वे हाते की तरफ देखना नहीं भूलते...उत्तर की तरफ, लगभग सौ गज की दूरी पर—कब्रिस्तान और उसके ठीक सामने दक्षिण में...छोटे-मोटे घरों की पंक्तियाँ—मिशन कम्पाउंड। चलने के पूर्व, गिरजाघर की सीढ़ियों को जरूर देख लेते। रोज की तरह, वह वहाँ सदा उदास बैठी रहती। गमगीन चेहरा, घुटनों के बल...सहारे, झुका रहता...बाल खुले रहते। हैरान से वे सोचते, यह लड़की कौन है ?...इतनी रात तक क्यों बैठी रहती है ?...मगर वे टोकते नहीं। सोचते, ईश्वर की दरगाह है, जिसे शांति न मिलती हो उसे यहाँ आने से कौन रोक सकता है ?...

रात खिसकने को हुई। नित्य की तरह पीटर बाहर आये। वह आज भी उन्हीं को तक रही थी। उनके कदम, सीढ़ियों के पास जाकर थम गये।

'कहाँ रहती हो ?'

'हम...?...यहीं पड़ोस में।'

'इतनी रात घर से बाहर रहना ठीक नहीं।

'तुम्हें पसन्द नहीं तो हम जाते हैं।' और वह उठ कर धीरे से जाने लगी। पादरी लौट आये, उनके मस्तिष्क में यह बात तीर सी घूमने लगी—'तुम्हें पसन्द नहीं तो हम...'

मोमबत्ती ने अन्तिम हिचकी ली। पादरी ने बाइबिल बन्द कर दिया। वह सीढ़ियों पर ही बैठी थी। निकट जाकर पीटर ने पूछा—

'आज फिर आ गई ?'

'...हूँ...।'

'सुनो, कल से मत...

'मत आओ,यही न ! मगर हम क्यों नहीं आयें ? तुम्हें पसन्द नहीं, तुम मत आओ। हम तो आयेंगे ही।' पीटर भोचक से रह गये। 'एक बात पूछूं ! तुम्हारा नाम क्या है ?

'पीटर...।'

'हमारा नाम जानते हो ?...बाबलू है, याद रख सकोगे ?' बिना कुछ उत्तर दिये पादरी लौट आये।

रात सुकड़ने लगी। पादरी ने अंतिम पंक्ति पढ़ी—'अपने पड़ोसी से, अपने जैसा प्रेम करो'...बाइबिल बन्द करके बाहर आये। प्रतीक्षा में बाबलू बैठी थी, वे उसके निकट जाकर —हे नो गये।

'बैठ जाओ न, खड़े क्यों हो ?' वे बैठ गये ।

'आज मैंने पढ़ा है—अपने पड़ोसी से अपने जैसा…

'प्रेम करो, यही न ! …ठीक तो लिखा है ।'

'तुम…तुम भी तो हमारे पड़ोस में रहतो हो ।' पादरी ने साहस बटोरा ।

'हाँ, रहते तो हैं…मगर कहीं तुम…तुम्हारा मतलब… बीच में ही जैसे कोई विराम लग गया ।…'धत्'…और वह लजा कर भाग गई । आज पहली बार पादरी ने उसके अधरों पर मुस्कुराहट देखी ।



'ईश्वर प्रेम है, प्रेम ईश्वर है ।'…पीटर सोच रहे थे, उन्हें ईश्वर से कितनी लगन है, कितना लगाव है । परन्तु फिर भी इस तीस वर्षों की आयु में…उन्हें न पूर्णता पा सकी, न वे ही पूर्णता को पा सके । साधना अधूरी प्रतीत होने लगी…आराधना फीकी नजर आने लगी । वे सोचने लगे, जब ईश्वर से लौ लगाई जाती है तो फिर उसके बंदों से क्यों विरक्त…। रोशनी की साँसे उखड़नें लगीं । अन्तिम विदा देकर पादरी बाहर आये । आज उनकी आँखें मौरक ही न जाकर, केवल सीढ़ियों पर ही जम गईं । उन्हें अपनी आँखों पर से विश्वास उठने लगा । सीढ़ियाँ बिना चाँद की रात सी सूनी थीं । वे सन्न रह गये । आज बाबलू क्यों नहीं आई…? आज उन्हें अकेलापन खलने लगा…वे वहीं बैठ रहे ।

'अकेले बैठे हो…' आवाज़ तैर गयी ।

'हाँ…।'

'नाराज़ हो क्या ?...लो हम आ गये, कुछ देर तो जरूर हो गई।' वह बोली। बहुत देर तक दोनों बैठे रहे। बाबलू अजीब तरह की कहादियाँ सुनाती रही...पादरी सुनते रहे।

...'अरे ! तुम्हें तो नींद आ रही है। लो, हमारी गोद में सिर रख लो...आराम मिलेगा।' यंत्र की तरह पादरो ने सिर झुका दिया।...

'तुम्हें नींद नहीं आती क्या ?'

'नहीं पीटर ! हमारी ऐसी किस्मत कहाँ।'

'मैंने आज पढ़ा है...ईश्वर प्रेम है, प्रेम ईश्वर है।'

'सच...?'

'हाँ, बाबलू !'...और जाने कब उनकी आंखें लग गईं। वे सोते रहे। रात जब झुकने को आयी, बाबलू ने उन्हें उठाया—'उठो !...उठो न !!...अब हम जाते हैं।' वह जाने लगी, फिर रास्ते से ही मुड़ पड़ी—'क्यों पीटर, तुम हमें चाहते हो क्या ?'

'इस हसीन चांद की कसम।'...उसके मुख पर सन्तोष की रेखायें तैर गईं, वह हंस कर जाने लगी।

दिन उड़ते गये, रातें गलती गईं। पादरी ने अनुभव किया, उसके जीवन में पूर्णता आ गई है। उनकी साधना सुहागिन हो गई...। अब दो कंधों के सहारे, ईश्वर के नियमों का पालन करना सहज प्रतीत होने लगा। लोग पादरी को अकेला रहने को कहते हैं...मगर ईश्वर की आराधना करने पर भी, कहां पूर्णता आती है ?... आदम अकेला था। उस एकान्त को दूर करने के लिए ही तो ईश्वर ने हव्वा ... की रचना की थी। उसे एक संगिनी दिया था ...। फिर पादरी

ही क्यों....?

अब बाबलू उनके बहुत निकट आ गई थी और वे बाबलू के।...अब हर रात रंगीन होती...चाँदनी से सोन जुही की खुशबू टपकती...तारों के बीच, दोनों की चर्चा छिड़ती......। मगर आज न पादरी की खिड़की ही खुली और न रोशनी ही हंसी। उनके सिर में दर्द था। वे पीड़ा से बेचैन अपने पलंग से लगे थे। जब रात काफी चढ़ आई, तब उन्हें ऐसा लगा जैसे कहीं कोई गा रहा है, आवाज बड़ी भली लगी .. दूर से आती आवाज, सिमट कर कहीं निकट ही थम गयी---

'तुमने बुलाया---
हम आ गये...
इस पवित्र क्रास के नीचे
हम आ गये...
ये गिरजा गवाह है;
विश्वास मानो--
हम मरियम से अछूते हैं,
यह गिरजा गवाह है,
तुमने बुलाया--
हम आ गये--

किसी जादू के असर से पीड़ा डूबने लगी। वे उठकर बाहर आये। बाबलू रोज़ की तरह सीढ़ियों पर ही बैठी थी। गीत की कड़ियां शून्य में भटक चुकी थीं। वे पास आकर बैठ रहे।...

'आज बहुत देर लगा दी...शायद बाइबिल में खोये थे; बाइबिल पढ़नी अच्छी बात है।

'सिर में पीड़ा थी, इसलिए खामोश लेटा था।'

'दर्द है ?......तो ऐसे क्यों हो, लेट जाओ न!' और ज़बरदस्ती उसने पादरी का सिर अपनी गोद में ले लिया। कुछ देर वह वही गीत गुनगुनाती रही। 'आज कहानी तो नहीं सुनोगे ?'...उसने पूछा। 'क्यों...? क्यों नहीं सुनूंगा ?'

हमेशा की तरह वह कहने लगी—

"आज से कुछ पहले, जोज़फ नाम के एक वीर पुरुष रहा करते थे। कस्बे के लोग उन्हें बहुत प्यार करते थे। पहली पत्नी से उन्हें एक लड़का हुआ, उसका नाम उन्होंनें आईज़क रखा। लड़का ठीक अपने पिता पर गया। वही सूरत वही गठन...वही हृदय...। आईज़क की माता के मरने पर जोज़फ ने दूसरी शादी करली। इस पत्नी से भी उन्हें कई लड़के हुए। धीरे-धीरे सब बड़े हुए। जब जोज़फ मर गये तो सौतेले भाइयों ने यह कह कर कि हमारे पिता के यहाँ तुम्हारे लिए स्थान नहीं है, आईज़क को निकाल दिया। आईज़क बिचारे करते क्या, बेबस हो पड़ोस की रियासत में जा बसे।

अपने व्यवहार से वहां के लोगों को भी उन्होंने मोह लिया। ईश्वर की दया कहो, अपनी लोकप्रियता से वे उस कस्बे के सूबेदार बन गये। उन्होंने वहीं शादी कर ली।... भाग्य-चाँद सा खिल गया...ठीक पूनम-सा।

समय का फेर देखो पीटर, कुछ अन्य जातियों ने कस्बे पर चढ़ाई कर दी। उनके सौतेले भाई सहायता के लिए उनके पास दौड़े। आईज़क के दिल में अब भी हमदर्दी पलती थी। मगर वे बोले—'आज मदद मांगने आये हो, किस मुँह से ?...'

भाई, अपराधी से खड़े रहे। उनमें जो बड़े थे हिम्मत कर बोले—'भइया, अब हमने फिर आपकी तरफ रुख किया है कि आप हमारे लिए जंग करें और कस्बे के हाकिम भी बनें।'...

तब आईज़क अपने भाइयों के साथ पुराने कस्बे को लौट चले। उन्होंने विद्रोहियों के पास, यह कह कर दूत भेज दिया कि जंग करने से क्या लाभ ?...नाहक लहू बहाना वंचित नहीं। जो तुममें से वीर है, द्वन्द्व-युद्ध के लिए तैयार हो जाय, जिसकी जीत होगी, वह कस्बे का अधिकारी होगा। बात तय पा गयी। विपक्ष का सरदार ही युद्ध के लिए तैयार हुआ। नियत समय पर दोनों दल जमा हो गए।...इधर से आईजक मैदान में उतरे, उधर से सरदार योगा। नंगी तलवारें टकराने लगीं। योगा बड़ी वीरता से लड़ रहा था। ऐसा लगता, वही जीतेगा।...तब आईज़क ने मन्नत मानी—'या रब्ब...या खुदा ! मेरे घर लौटने पर जो कोई भी सबसे पहले मेरे स्वागत को आएगा, उसे मैं तेरे लिए बलि चढ़ाऊँगा।'......और अन्त में योगा मारा गया, आईज़क की खुशियाँ खुश हो गयीं।

जब वे अपने घर को लौटे तो उसकी बेटी झाँज बजाती और नाचती हुई उनके स्वागत को आई। इस बेटी को छोड़ उन्हें और कोई औलाद न थी। उसे देख कर उन्होंने कपड़े फाड़ डाले—'हाय ! मेरी बेटी यह तूने क्या कर दिया ? जो मुझे दुख देते हैं उनमें से तू भी एक है। मैंने परमेश्वर को वचन दिया है और अब मैं फिर नहीं सकता।' बीच में ही टोक कर पादरी बोले—'बाबलू, वह पिता कितना महान होगा, कितना ईश्वर भक्त...।'...'हाँ'...और वह फिर कहने लगी, तब उस लड़की ने पिता से कहा—'बापू, तुम्हारे मुंह से जो

निकला है वही करो।'...असली बात बता कर आईज़क रो पड़े।

'धत् पापा, कोई इस तरह रोता है ?...केवल एक दया करो, हमें दो महीने का समय दे दो ताकि हम अपने हम-जोलियों के साथ, अपने कुंवारेपन पर रो सकें...आँसू बहा सकें।' उसे इजाज़त मिल गई।

'ओह बाबलू ! आज की कहानी कितनी करुण है। मुझे तो उस लड़की पर दया आती है।' पीटर बोले। कहानी कहते-कहते बाबलू की आँख मिच गई। वह फिर कहने लगी—'वह लड़की दो महीनों तक पहाड़ों पर भटकती रही, रोती रही। मगर उसे कोई प्रेम करने वाला नहीं मिला। प्यासी की प्यासी वह लौट आयी।...तब उसकी बलि दे दी गयी। सखियां रो पड़ीं मर जाने पर, अपनी रीति के अनुसार आई, जक ने उसे दफना दिया। वह चुप हो गयी।......

'ओह !...' पादरी पसीज गए। रात ढलने लगी। बाबलू ने पूछा—'पीटर क्या तुम सचमुच हमें चाहते हो ?'

'हां बाबलू।'...

'फिर भी न जाने क्यों, विश्वास ही नहीं आता। हमें ऐसा लगता है, ये सब तुम फरेब दे रहे हो, मेरी सादगी से खेल रहे हो।' और वह फफक-फफक कर रोने लगी। चांद पीपल के पीछे खिसक गया।

'बाबलू, विश्वास करो मेरा...! इस चांद..., मगर बात बीच में ही छिन गयी। चांद था कहां ? पादरी फिर बोले—'धर्मशास्त्र में मना है कि ईश्वर और बाइबिल की कसम खाओ। परन्तु केवल तुम्हारे विश्वास के लिए आज मैं बा

बिल की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि तुम्हें छोड़ मैंने अन्य किसी को नहीं माना। ईश्वर के बाद तुम्हें ही स्थान दिया है।'

बात पूरी होते ही बाबलू के आँसू थम गये। वह खुशी से पागल होने लगी... 'अब हमें तुम पर विश्वास आ गया पीटर। आज तक हम इसी के लिए भटक रहे थे...आज हमें सच्चा प्रेम मिल गया।' और वह बच्चों की तरह नाचने लगी।

दूसरे ही क्षण उसमें गंभीरता आ गई। उसकी आवाज़ भर्रा गयी—'मगर पीटर जानते हो...हम वही बदनसीब लड़की हैं, हम ही आइज़क की बेटी हैं। आज हमारी प्यासी आत्मा को प्रेम मिल गया बस इसी के लिए हम भटक रहे थे। आज हमें शांति मिल गई। अच्छा पीटर, अब जाते हैं,...तुम रोज़ की तरह बाइबिल पढ़ते रहना। देखो उधर हमारा घर है। और वह जाने लगी। पादरी फटी-फटी आँखों से उसे निहारने लगे। धीरे से क़ब्रिस्तान का द्वार खोल वह भीतर चली गयी। वहाँ से अन्तिम विदाई में हाथ हिलाने लगी। जैसे कह रही हो—'पीटर, अब बिदा दो।'...और फिर छाया, शून्य में जाने कहाँ खो गई, गिरजे का घंटा बजने लगा—आवाज गूंजने लगी—

'तुमने बुलाया——
हम आ गये......
इस पवित्र क्रास के नीचे
हम आ गये
ये गिरजा गवाह है।'...

पादरी की आँखें भीग गयीं, शायद इस लिए कि अब फिर बाबलू कभी नहीं आयेगी। उन्होंने घुटने टेक दिये—— 'ईश्वर' बाबलू की आत्मा को शान्ति दे...!' और गले में झूलते क्रास को माथे से लगा लिया...आमीन !...

टूटी नाक वाला गधा



चन...चिन्...

—निगोड़ी...तोड़ दी न ? जरा झाड़-पोंछ क्या करने कहा कि बस...। कोई सलीका नहीं। सुनीता मेज़ के निकट खिसक आई। उसने चीनी के गधे को बड़े प्यार से उठाकर देखा, केवल नाक टूटी थी। वह बड़े स्नेह से लेकर आई थी। इस गधे को। जब वह पीहर से चलने लगी थी तो सखियों ने उसे किस कदर घेर रखा था। तभी उसकी बहन पुनीता आई भागती हुई—–

—लो दीदी, संभाल कर रख लो। इसमें जीजा जो हैं। और वह कागज़ का एक पुलन्दा उसे थमा कर हँसने लगी थी। खोलकर जो देखा—गधा।

—छी: यह भी कोई मज़ाक है !—रमोला को बुरा लगा। बेबी पिनक गई तुम्हें क्या लगता है, मैं मजाक करती हूँ इसी लिए कि मेरे जीजा जो हैं।...दीदी ! कितना समझाती रही, कालेज खुलने में दस दिनों और की देर है, मैं चली जाऊँगी तो आकर ले जाईए दीदी को...पर वे तो कुछ समझते ही नहीं एकदम बुद्धू है, इस गधे की तरह।...

सुनीता अपने में लौट आई—सामने क्या खड़ी है रे, जाती क्यों नहीं ?

दाई चली गई। सुनीता अपने में जलती रही। मन न लगा तो 'नीटिंग' लेकर बैठ गई। प्रोफेसर साहब के लिए 'पुलोवर' बुनने लगी। ऊन के दो सफेद गोले उसकी गोद में पड़े थे। उसके हाथों में थिरकन थी। एकाएक रुक वह कुछ सोचने लगी। उसे दोनों के दोनों गोले भेड़ के सफेद-सफेद बच्चे से लगे। उसने बड़े स्नेह से उन ऊन के गोलों पर हाथ फेरा।...फिर बुनने लगी। गोद में गोले हिलने लगे। वह हाथों में अधिक से अधिक गति भरने लगी गोले और ज़ोर से हिलने लगे। उसे यह अच्छा लगा। वह बुनती रही, गोले हिलते रहे। उसका जी हुआ, वह हमेशा बुनती रहे।...

मार्निंग कालेज से, प्रोफेसर साहब ग्यारह के लगभग लौटे घर खामोशी में डूबा-डूबा सा लगा। इन्होंने एक बार सुनीता को देखा। वह कुछ बोली नहीं। वे किताब रख, नीचे गुसल करने चले गये।...जब स्नान कर लौटे तो सुनीता ने कहा,

—खाना टेबल पर रखा है, खालो।

—और तुम ?

—मैं खा चुकी।

प्रोफेसर साहब खुद से खाना परोसने लगे। पहला कौर उठाते ही उनका रंग बदल गया।

—आज फिर कद्दू, जानती हो मैं कद्दू नहीं खाता।

—मैं कद्दू नहीं खाता। कद्दू नहीं तो मेरा सिर...कह-कह हार गई कि कोई छोकरा ठीक कर दो। वह-बाज़ार तो करेगा। यह छोकरी, कभी सब्जी कम तो कभी पैसे और जब कहो तो साफ जवाब—हमसे पार नहीं लगता भाय जी। मैं कद्दू नहीं खाता, कहो तो कल से मैं ही हाट बाजार हो आया करूँ।

—अब समझा, इतना गर्म क्यों हो। सुनो डीयर, तुम्हें बाहर जाने की कतई आवश्यकता नहीं अपना कालेज पीऊन है न—वही किसना, कह रहा था कि उसका छोकरा देहात से आया हुआ है यही कोई अठारह बीस का है। अगर काम मिल जाय तो वह शाम को उसे लेकर आयेगा—मैंने उसे लाने कह दिया है।

—सच—सुनीता खुश हो गई।

—हाँ सुनो, आओ अब खालो। 'नीटिंग रख, वह उनके निकट खिसक आई।

—नीटिंग कर रही हो ?

—हाँ।

—किस के लिए ?

—और किसके लिए...तुम्हें छोड़ !



किसना अपने बेटे को लेकर आया। प्रोफेसर साहब ने छोकरे को आगे बुलाया—इशारा कर। वह आगे बढ़ आया।

—क्या नाम है रे ?

—गुलटनवा

—काम कर सकेगा ?

—हाँ...

प्रोफेसर साहब ने किसना को तरफ रुख किया।

—किसना, ३० रुपये सूखा या खाना-कपड़ा सब नो-दस रुपये गीला।

—सूखा नहीं सरकार !···गीला रहने दीजिए। यहाँ खा लेगा। उतारन पहिने गा। मुई धा पर सुत रहेगा।—फिर

उसने गुलटन की तरफ देखा । गुलटन चुप खड़ा था ।

——गुलटनवा रे, हजूर भगमान होते हैं । चरण धरे रहिओ ।···——प्रोफेसर साहब और सुनीता को सलाम बजा कर वह चला गया ।

सुनीता बड़े ग़ौर से अपने इस नये नौकर को देख रही थी ।··· लड़का डरा सा खड़ा था ।

——सुनते हो, एक दम मरियल है !

—हूँ······

——इससे क्या काम चलेगा ।

——दो-चार दिन करा कर देख भी लो ।

गुलटन कोने में चुपचाप खड़ा था ।

सुनीता ने आँचल से एक रुपये का नोट खोल कर उसे बुलाया—सुन रे, इधर आ··

वह सामने आगया ।

—मां है ?

—नैं ।

—देख, शाम जाने को है···भाग कर किरासन तेल ले आ, बत्ती जलानी है ।

लड़का टुकुर-टुकुर निहारने लगा ।

—खड़ा क्यों है रे ?

लड़का एक क्षण फिर चुप रहा ।

—मिटिया तेल न ?

—हाँ रे, मिट्टी-तेल ही ।

लड़का रुपया ले धोती में खोंसने लगा ।

—अरे हाथ में रख, वैसे गिर जायेगा ।

मुट्ठी में रुपया रख लड़का भागा ।

—अरे सुन रे···

लड़का फिर लौट आया ।

—तेल किसमें लायेगा, देख वहाँ बोतल है···

लड़का बोतल उठा कर चला गया ।

एकदम गंवार है···गधा कहीं का । सुनीता पिनक गई । प्रोफेसर साहब चुप रहे । फिर उठ कर, अपने किसी मित्र के यहाँ घूमने निकल गये ।···

कुर्सी पर सुनीता बैठी थी । गुलटन तेल लेकर आ गया ।

—बत्ती जला कर ले आ ।

सुनीता चुप थी । दाहिने हाथ में पुस्तक थी—'बर्थ आफ ए चाइल्ड' । गुलटन ने बत्ती मेज पर रख दी । आँखें बन्द किये ही वह बोली—थोड़ी तेज़ कर दे···

उसने बत्ती बड़ा दी ।

—और···

उसने वैसा ही किया ।

—और

गर्मी फैलने लगी ।

—थोड़ी और······

गुलटन घबरा गया···और 'चन···चिक्' की आवाज़ के साथ चिमनी चूर-चूर हो गई । सुनीता जैसे सोते से जग पड़ी गुलटन भय से खड़ा-खड़ा कांप रहा था ।

—गधा कहीं का ।

गुलटन चुप था ।···

—जाकर बाहर बैठ ।

गुलटन बाहर चला गया। वह फिर आँखें मूंद कर पड़ रही। उसे लगा, जैसे कोई बत्ती तेज कर रहा है और बत्ती की सारी की सारी गर्मी उसके शरीर में पैठ जाना चाहती है।...शरीर को उसने ढीला कर दिया ताकि गर्मी आसानी से पैठ जाये और उसका शरीर भी चिमनी की तरह चन से चनक जाये···

—उठो न।

वह सोते से जग पड़ी। प्रोफेसर साहब आ गए थे।

—सोई गई थी ?

—नहीं, बस ज़रा···



सुनीता को फ्लेरिया की शिकायत है। इधर कुछ दिनों से पैर में दर्द सा होने लगा है।···

—आज दर्द कैसा है ?

—कमता नहीं···

—ओह···

—कल गुलटन से कहा कि जरा दबा दे तो सुनी-अनसुनी कर, पास वाले तालाब में नहाने चला गया। ओह—और वह अपने से अपना पैर सहलाने लगी। प्रोफेसर साहब ने सुनीता का पैर देखा, कुछ सूजा-सूजा लगा।

—गुलटन रे···

—जी

—महीना भर हो गया तो चर्बी चढ़ गई है। पैर क्यों नहीं दबाता है रे···?

गुलटन चुप खड़ा रहा।

—दबा देना—और वे 'वाटर प्रूफ' लेकर जाने लगे। कुछ-कुछ बारिश होने लगी।···

—आज देर से लौटूंगा, कवि गोष्ठि है।

सुनीता चुप रही।···

नौ के करीब वह बिस्तर पर गई। एकाएक पैरों में दर्द होने लगा।

—गुलटनवा···

लड़का हाजिर हो गया।

—पैर दबा दे।

वह पैर दबाने लगा। बाहर बारिश हो रही थी।...पांच मिनट···दस मिनट···आधा घंटा, वह बराबर पैर दबाता रहा।

—शादी हो गई है···

—नैं···

खामोशी तैर गई।

—दबा न रे···

गुलटन रुक गया।...सुनीता ने बढ़ाते हुए कहा—'दबाता क्यों नहीं ?' गुलटन ने धीरे से दबाया।

—जरा-जोर से, खाता नहीं क्या ?

गुलटन दबाने लगा···बाहर बारिश हो रही थी।

—खाक मर्द बना है रे...इतने में हांफने लगा। जोर से दबा तब न दर्द जायेगा।

गुलटन पूरा जोर लगा कर दबाने लगा···बाहर बारिश हो रही थी···

तभी बिजली कड़की। हवा का एक झोंका नदी के पास

वाले पीपल से टकराया। पीपल का एक पत्ता पानी में गिर कर ऊपर ही ऊपर तैरने लगा···क्योंकि पत्ता हल्का था। बाहर बारिश···



गुलटन की नौकरी वाली नई जिन्दगी एक शाम से प्रारम्भ हुई थी। इसके बाद से यह एक शाम, रात···सुबह··· और दोपहर का दायरा तय कर रोज़ नई शाम बनती रही। इस एक शाम में गर्मियों की लम्बी छुट्टी डूब गई···यह एक शाम, दिन···दिन से सप्ताह और सप्ताह से महीने की हद पार कर गई। गुलटन चौखट पर बैठा-बैठा जोड़ रहा था कि उसे आये कितने महीने हो गए। परन्तु हर बार हिसाब गलत हो जाता।···प्रोफेसर साहब अखबार में खोये थे और सुनीता अपनी 'नीटिंग' में···गुलटन महीनों का हिसाब जोड़ रहा था। एकाएक प्रोफेसर साहब बोले–अरे गुलटनवा···वह सामने आ गया।

–पैर दबा, बड़ा दर्द है।

वह पैर दबाने लगा···सुनीता देखने लगी

–जरा जोर से, खाता नहीं है क्या ?

वह अपनी पूरी शक्ति से दबाने लगा।···पांच मिनट··· दस मिनट···उसके हाथ कुछ ढीले पड़ गये।

हरामी ! मर्द बना है···इतने में हांफ गया।

वह पैर दबाने लगा। सुनीता ने पूछा––कैसे दर्द उठ गया ? प्रोफेसर साहब बोले––कालेज में सीढ़ी चढ़ते समय ज़रा पैर फिसल गया। गिर पड़ा, काफी चोट लग गई।···

गुलटन पैर दबाता रहा···कुछ देर बाद हाथ फिर ढीला पड़ा। प्रोफेसर साहब ने एक लात जमा दी—साला, जाने कब से ठूंस रहा है, शरीर में अन्न लगता ही नहीं।···हराम का खाता है, सामान बांध और निकल जा···गधे का बच्चा। मर्द बना है—जाकर चूड़ी पहन ले।

गुलटन उठ कर भीतर गया। अपनी फटी अंगोछी में सामान बाँधने लगा।···सुनीता सोचने लगी—अपने खाक मर्द बने हैं। विवाह किए तीन साल लगने को आए, इनकी मर्दानगी तो कभी मुझे लगी तक नहीं।···जब से बेचारा गुलटन आया है तब से तो मेरे पैर भी···सामान बांध कर गुलटन सामने खड़ा हो गया, जाने की आज्ञा मांगने आया था।

सुनीता ने अपनी कुर्सी प्रोफेसर के निकट सरकाते हुए कहा—डियर, इसे माफ कर दो ना, काम तो सीख गया है... अच्छा कर लेता है···। दुबला पतला है तो क्या, मर्द तो है। और फिर 'अब' तो तनदुरुस्त भी हो जाएगा।···

—ठीक है, जैसा तुम चाहो डार्लिंग। और प्रोफेसर साहब फिर अखबारों में खो गए। वे कुछ समझे नहीं।···सुनीता उन्हें देखने लगी। उसे पुनीता की बात याद आ गई—'जीजा जी तो कुछ समझते ही नहीं···एकदम बुद्धू हैं—इस गधे की तरह।'···

सुनीता की आंखें उस चीनी के गधे पर थम गईं जिसकी नाक उसी दिन टूट गई थी जिस दिन गुलटन के कदम पहली बार इस घर में पड़े थे।..

दो बड़े आँसू

सिन्दूरी घाटी का बादल, क्षितिज के द्वार छितरा गया। शाम किसी नई दुलहन की तरह गुलाबी हो गई।···हम लोगों की नाव धीरे-धीरे पानी में फिसल रही थी। मैं अकेला एक कोने में बैठा शाम की सुहानी ढलती उम्र देख रहा था। साथ बहुत लोग थे, घूमने के शौकीन। खवैया—एक बूढ़ा, जिसकी बूढ़ी उम्र उसे बूढ़ा बनाये थी, बहकी-बहकी नशीली अदा से चप्पू चला रहा था। पानी एक सिहरन लेकर सिमट जाता। उसके बगल, एक गोरी सी लड़की बैठी थी। रेशम से बाल···संगमरमरी सफेदी···पूनो सा रूप···पन्द्रह-सोलह का सन, सब था···परन्तु सूरत पर एक अजीब दर्द जमा था।

शाम की आँखों में नींद जगी। नाव किनारे लगी। वह लड़की नाव से उतर कर कोने में आ गई। उसके दोनों पाँव, घुटने से नीचे पानी में डूबे थे और वह एक हाथ से साड़ी को कुछ-ऊपर उठाये थी। कहीं भीग न जाये लप्पा ?···उसका दूसरा हाथ खुल कर पसरा था। सभी उतरने वाले, उसकी हथेली में किराया धर अपनी राह निकल रहे थे। जब मैं निकट आया, मैंने उसे गौर से देखा। वह सकपका गई। मगर कुछ बोली नहीं। मैंने पैसे रख दिये। फिर भी वह चुप रही।

बिल्कुल श्वेत साड़ी, अंगुली-कान सभी नंगे, माँग सूनी···मुझे लगा, ये विधवा है। इतनी कच्ची उम्र में ये दशा? मैंने सोचा, पूछ लूँ, परन्तु उसके चेहरे पर घिरी बदली देखकर मैं सहम गया···कहीं ग़म दूना न हो जाये?



सैर सपाटे के लिए सभी निकलते हैं। मैं भी शौकिया निकला था। एम० ए० की परीक्षा चुक गयी थी। सोच नदारद। उस तट के किनारे ही डाक बंगला था। सैर पर आने वाले इसी में डेरा डाला करते। मैं भी इसी में ठहरा। स्थान बड़ा सुन्दर। बाहर कुर्सी निकाल कर ही किनारे का दृश्य देखा जा सकता—बजरों (House Boats) की मुस्कुराती पंक्तियाँ···घूमने वालों की टोलियाँ छोटी नावों की होड़ और रात में घुलती सांवली शाम।

नित्य की तरह, मैं बाहर बैठा था। मन ऊब चला। यूं ही घूमने निकल गया। थोड़ी दूर, किनारे पर देखा—एक मड़िया थी, चूल्हा भभक रहा था। हाँडी चढ़ी थी और वही नाव वाली लड़की आँगन बुहार रही थी। मुँह में सिगरेट लगा, माचिस के लिए मेरे हाथ जेब में गये, मगर उदास लौट आये। मैं आगे बढ़ गया।···'ज़रा आग दोगी?' वह उठी, चूल्हा से लकड़ी थमा कर खड़ी हो गई। मैंने सिगरेट सुलगा कर लकड़ी वापस करनी चाही—तभी उसकी नंगी कलाइयों पर नज़र थम गई। ...विधवा! जाने मुझे कैसा-कैसा तो लगने लगा। उसकी ओर देखा, वह मुझे ही निहार रही थी। मगर चुप! उसकी यह चुप्पी मन को भा गई।···

'क्या नाम है तुम्हारा ?' मैंने अपनापन उड़ेते हुए पूछा। वह बोली नहीं पर मेरी आंखों में डूबकर रोआँसी हो गई।··· विधवा, इस भरी-पड़ी जिन्दगी में...हवा में जहर घुलने लगा। मेरा भी दर्द पिघलने लगा। बिना कुछ कहे, वह मड़िया में भाग गयी।



मैं उस दिन फिर उसी की नाव पर था। नौका, घूमने वालों को लेकर तैर रही थी। बूढ़ा चप्पू चला रहा था और उससे कुछ परे वह बैठी थी। मैं सिगरेट फूंक रहा था—धुँआ किसी पुरानी याद की तरह मुझे घेर कर फिर उड़ जाता। आज भी वह पहली उदासी समेटे उजले वस्त्र में थी। जिंदगी से हारी हुई, उसकी तस्वीर गुमसुम थी। मैं उसे निहार रहा था। वह भी मुझे देख लिया करती। आज तक मैंने उसे हँसते नहीं देखा था। इसी कारण आँख मिलने पर मैं कसदन मुस्करा देता, इस भरोसे पर कि यह भी हँसेगी। परन्तु प्रभाव विपरीत पड़ता, वह और भी गमगीन हो जाती...दर्द मोम सा पिघलने लगता।

'सोनी बिटिया, पानी पिला न !' बूढ़े ने सारा स्नेह उड़ेल दिया। वह धीरे से उठी, उसकी दर्दीली चाल के साथ हवा भी हौले से चली। पानी पिला, उसी पुरानी जगह,किसी पुरानी पीर की तरह जम गई।

शाम की उम्र चुकी। नाव किनारे लगी। हमेशा की तरह वह हाथ पसार कर खड़ी थी। एक-एक कर सभी यात्री उतरने लगे। मैं अन्त में उतरा। उसकी हथेली खुली

थी। मैंने पैसे थमाते हुए कहा—'उस दिन नाम छिपाती थी, आज जान ही गया। क्यों–सोनी है न ?' ...वह चुप रही। एक हल्की सी मुस्कराहट की लकीर उभरी और फिर तुरन्त ही खो गई। फिर वही पुराना दर्द...वही उदासी। मैं उसकी दशा देख नहीं सका...ये उम्र और आँसू...



अब मैं अक्सर उसकी मड़िया के सामने से गुजरता। बूढ़े से पहचान हो गई थी। वह भला आदमी, यथासाध्य मेरी सहायता कर दिया करता।......

उस दिन मैं पहुंचा, वह अकेली बैठी थी। मुझे देखते ही उठ खड़ी हुई। 'बापू नहीं हैं क्या ?' मैंने पूछा। हमेशा की तरह खामोश रही, केवल सिर हिला दिया।...'देखता हूँ तुम बहुत उदास रहा करती हो, और ये हाथ-पाँव एक दम नंगे क्यों ?'...उसकी आँखों में पानी की दीवार छन गई। वह मेरी आँखों में डूब गई। मैंने उसे अपने से लगा लिया। हम दोनों चुप थे। न बोल कर भी बहुत कुछ समझ रहे थे बेज़बान है जुबां मेरी......। अनायास ही वह परे हट गई। एक बार उसने मुस्करा कर देखा और फिर वह भाग गई मड़िये में। ...बाबा आ गया था।



दूसरे दिन मैंने उसमें कुछ विशेष परिवर्तन नहीं पाया। केवल हाथों में एक-एक चूड़ी। 'आज पहन ही लीं ?'... वह चुप रही। पहननी ही थीं तो ये एक-एक क्या...कल मैं

ढ़ेर सारी ला दूंगा तब पहनना, और मैंने जबर्दस्ती उन चूड़ियों को ...। इसके पहले कि वह कुछ बोले, बूढ़े की पुकार आ गई। वह चली गई। परन्तु उसकी चूड़ियाँ मेरे हाथों में रह गयीं।

उस रात, उसकी चूड़ियां मेरे सांसों के साथ गाती रहीं। मैंने एक कविता लिखी——

तुम्हारे हाथ की–
उतरी हुई
दो चूड़ियां...
दो टुकड़े
बादल के
सदृश्य हैं,
जिन्हें लखकर
कम से कम
ग़म के मौसम
में आस तो बँधती है
कि मेह बरसेगा,
भले ही न बरसे–
उसकी इच्छा !



तुम्हारे हाथ की—
दो चूड़ियाँ,
(तुमने स्वयं नहीं दियें)
मैंने ही–

हँसी-हँसी में उतार लिये,
ये रंगीन चूड़ियां—
रंगीन सपनों की तरह
नींद में घुल कर
उसे और रंगीन बना देतीं हैं,
भले ही इनका मूल्य—
तुम्हारे लिए कुछ न हो,
मेरे लिए—
याद के 'पंख' हैं
जिनके सहारे मैं उड़ता हूँ,
कोई जादूई चादर है...
जिसे ओढ़ कर—
तुम तक पहुँचता हूँ;
तुम्हारे हाथ की—
मेरे लिए उतरी चूड़ियाँ
बड़ी कीमती हैं...
तुम क्या जानो——
इनकी कीमत,
दो बड़े आंसुओं का मूल्य—
गिराने वाले से अधिक
उसके लिए होता है...
जिसके लिए गिराया जाता है।

चांदनी चमकने लगी। रात कुछ और खूबसूरत हो गई।

साँझ सँझा गई। मैं उसकी मड़िया पर पहुँचा। वह वाय

बना रही थी। बाबा वहीं किनारे खाट पर धंसा था।...'आओ बैठो बाबू।' उसने खाट से उठते हुए कहा।...'नहीं...नहीं, बाबा तुम बैठो ...मैं यहीं बैठ रहता हूँ' और मैं पैतियाने बैठ गया।

वह चाय लेकर आई, मुझे और बाबा को थमा गई। मैंने उसकी आंखों में झाँकने की कोशिश की, मगर वही पुरानी पहचानी मुस्कराहट के सिवा कुछ नहीं थी। अबतक मैं उसकी दशा से पिघल चुका था। उसके दर्द अब और नहीं सहे जाते। गई रात हीं, मैंने निर्णय कर लिया था कि सोनी एक बार क्या...हजार बार क्यों न विधवा हो, मैं उससे विवाह कर उसकी मुस्कराहट उसे वापिस दे दूंगा। साँसों में खुशबू भर दूँगा...

चाय के बाद मैंने कविता सुनाई। बाबा और वह ध्यान से सुनते रहे।... 'क्यों सोनो! कुछ समझीं?' मैंने पूछा। उसके उत्तर के पूर्व ही बाबा ने कहा—'ये क्या समझेगीं और मैं क्या? दोनों तो अनपढ़ हैं, बाबू।'... सोनी कविता की डायरी को उलट-पुलट करती रही।

सिगरेट मुँह में लगा लिया—'सोनी! आग।' वह आग ले आई। कश खींच कर मैंने देखा, वह वहीं खड़ी थी। सिगरेट का धुआं उसे चारों ओर से घेर ले रहा था। बाबा की ओर पीठ कर उसने उंगलियों से सिगरेट पीने की मनाही की। 'धत्! ...अरी सिगरेट पीनें से कुछ नहीं होता।' मैंने हँस कर टालने की कोशिश की।



दिन पिघलते गये। अब मेरे लौटने का भी समय आ गया

था। उस दिन मैंने उसके बाबा से बात छेड़ी—'मैं सोनी से ब्याह करना चाहता हूँ, बाबा !'...

'हाय राम !...उस अभागिन से बाबू।...वह तो...।' मैं जानता था वह क्या कहेगा, इसीलिए मैंने बीच में ही बात छीन ली—'वह जो भी है, जैसी भी है, मुझे अच्छी लगती है। मैं सब कुछ जानता हूँ।'

'सब कुछ ?' आश्चर्य से बूढ़े ने पूछा।

'हां, सब कुछ। केवल तुम सोनी से पूछ लो। अगर वह तैयार हो जाए तो...।'

मैं अपने घर लौट रहा था। सोनी ने विवाह करने से इंकार कर दिया था। जब मैं उससे अंतिम बार मिलने गया था, वह द्वार बंद कर सिसक रही थी। मेरी पुकार सुनकर भी उसने द्वार नहीं खोला। मैं लौट आया।...कारण पूछने पर बाबा ने बताया कि वह अपने अधरों पर खेलने के लिए दूसरों की मुस्कान नहीं छीनना चाहती।

सामान नाव पर लद चुका ...सोनी की ही नाव आज मुझे सोनी से दूर ले जाने को थी। बाबा था, मगर सोनी नहीं। नाव खुलने-खुलने पर थी, मैं सिगरेट फूंक रहा था। तभी वह दौड़ती हुई आई। बड़े जतन से रखी डायरी, उसने मुझे थमा दी। एक बार उसने मुझे पुनः उसी पुरानी नेह भरी अँखियों से निहारा...दो बड़े आंसू उसके गालों पर उग आये ... अपने दोनों हाथों से मुंह ढक वह तेजी से मेरी आँखों से गुज़र गई। एक क्षण मैंने जाती सोनी को देखा, फिर डायरी को।

'दो बड़े आंसुओं का मूल्य—

गिराने वाले से अधिक,
उसके लिए होता है...
जिसके लिए गिराया जाता है।'

उस दिन, कविता सोनी नहीं समझ रही थी। नाव आधा मार्ग समेट चुकी थी। अजाने ही मेरी जबान खुल गई—'ईश्वर भी कितना निर्दयी है, क्या मिला उसे सोनी को विधवा बना...?'

'विधवा...'बूढ़ा चौंक गया। ...'सोनी विधवा नहीं है बाबू, वह तो...' उसकी आवाज़ थर्रा गई। ......'वह तो बोलती नहीं...उस अभागिन की जबान नहीं है...उस गूंगी गुड़िया को लेकर क्या करते ? ' ' बूढ़ा दर्द से सर्द हो गया। और मैं...

सिगरेट जल रही थी—दबी हुई, मेरी उंगलियों के बीच और सिगरेट का धूआँ, मेरे सामने किसी पुरानी याद की तरह फैला था। उस धुएँ के मध्य एक तस्वीर बनी, गोरी-गोरी नाजुक अँगुलियाँ मुझे इशारे से मना कर रहीं थीं—'सिगरेट मत पियो।'...मैंने सिगरेट फेंक दी—पानी की धारा में वह टुकड़ा, एक सहारा पाकर एक ओर बह गई। परन्तु उस गूँगी का दर्द ?...

धीरे-धीरे, सिगरेट का बचा-खुचा धुआँ भी खो गया। ..

सभी मरी गेल

● ● ●

मछुवा टोला।...

घरों से हटकर, कुछ दूर पिछवाड़े से ही नदी गुजरती। काफी रात गये तक मछुवों का संगीत पानी की बाहों में तैरता रहता—

टिकू-बिकू नदिया में—
कल के हो प्रभु नौका चलाय जा...
असाढ़-सावन पनिया बरसाय
हाय रे...हाय...
नदी-नाला सभी मरी गेल...

और इसी धुन की कड़ियों में गुथी-गुथी प्यरिश्रा भी कछार पर ही 'सुत' रही। रात 'मार' होने वाली थी...

सुबह की आँखें खुलीं। प्यरिश्रा घर लौटी।...जी धक् से रह गया। किसी ने सेंध दे रखा था। उसने देखा, समान जस का तस—चोरी नदारत। फिर...? कुछ विचार कर गिलावा बना ईंट जोड़ने लगी।

देखते ही देखते पड़ोसियों की फौज जुट गई। किसी ने पूछा,—'ऐ प्यरिश्रा केक्कर करतूत है इ ?' प्यरिश्रा सहज भाव से चीखने लगी—'परवाह नहीं मौसी, होगा कोई मर्दुआ। घर में जनानी नहीं बैठाया, चला आया होगा, हरामी !'

फिर उसने एक बार अपने को देखा—लगा, अभी जवानी बुझी नहीं है...ताज़गी है तभी तो इ मुर्दुए कुत्ते की तरह घिघियाये फिरते हैं।...

साँझ, संझा गई। कछार के किनारे मछुवों का रोजाना वाला जमघटा फिर जम गया। आज जिसके मुख पर देखो बस...प्यरिआ, नहीं तो सेंध! इस दुर्घटना से सभी मछुवे विचलित से हो गये थे।...

—वर्षों से किसी की हिम्मत नहीं जगी कि छोकरियों से छेड़खानी करे...मगर आज?

—होगी कोई बुरी आत्मा, नदी के पास ही तो बहायी जाती है लाश।

—जरूर किसी प्रेत की करनी-धरनी है। भला कहीं आदमी भी...?

—जो हो, प्यरिआ तो हत्थे नहीं चढ़ी, रात भर तो कछार पर रही थी...

मछुवों के मन में जाने क्या-क्या बात उठती रहीं।...

—कौन साला होगा?...कुछ विचारते हुए दुक्खन काका ने बूढ़ों की तरफ घूरा। एक सनसनी फैल गई। अजीब खलबली बुजुर्गों में सन गई। कुछ थमकर, मछुवों की बूढ़ी-टोली ने राय गिरायी—'जवान तो आजकल ऐसा नहीं करते-धरते, सभी तो कुछ न कुछ पढ़े हैं। सरकार की इ तो किरपा है-विद्या बंटती फिरे है। भला पढ़-लिख के वे इ करम काहे करे लगे?

—तब जरूर कोई बुढ़वा होगा। घीसू ने चुटकी ली। ही...ही...ही, खी...खी...खी...बूढ़ों में हंसी खनकी।

—नहीं घीसू भाई, हम सब बरोबर के भागी हैं।... दुख्खन काका ने बात जोड़ी—घिसियाये अतीत का कोई मुँह झौंसा, हमारे बीच फिर उग आया है। मन में खोट जरूर है—इ तो साफ है। साले की छाया प्यरिआ के दिआल पर···

—सिरफ दीआल पर नहीं गया, इ परछैंया तो सारी टोली पर गिरी है।·· किसी ने दुख्खन काका की बातों पर पानी चढ़ाया।

बात रंग पकड़ चुकी थी। तभी प्यरिआ मछरी का अरक (सोरबा) लेकर आई। सभी अरक के लिये उमसे, बात जहाँ की तहाँ तह पाकर धरी रह गई।

—बड़ा बढ़िया बनाती है प्यरिआ...जरा नमक दे बिटिया।...बूढ़े लक्षमण दादा ने अरक सिटक कर कहा।

—तुम तो पीने में जुट गये लक्षमण ! अभी तक चटोरी आदत नहीं गई है का,...धरना दिए बैठो है ? इ हालत रही लक्षमण भाई, तो छोकरियों का निकलना-चलना थम जायेगा ...हाँ !'...दुख्खन काका ने बात फिर उगाई।

—हमारे पास तो साले को धरने के लिये कोई सुराग भी नहीं है। कुछ निशानी-विशानी छोड़कर गया होता तो एगो बात थी...। कित्ता चालू है हरामी।

कुछ ख्याल कर दुख्खन काका ने पूछा—'रात चौकी पर कौन था ?'...

उत्तर नदारत ! सब एक दूसरे का मुँह तकने लगे। घीसू बोला—'अरे बिछावन, बोलता क्यों नहीं है रे। रात तो तू ही पहरेदारी पर था...।'

—था तो का हुआ। मैंने छोकरियों का ठीका थोड़े

ले छोड़ा है ।...बिछावन पिनक गया ।

——बिछावन ! गुस्से पर धूल झोंको । बिगड़े से का... अंधियारे में ताक लगने पर...तो सकार दो न...।...घीसू ने मजाक किया ।

——तुम भी का मजाक करो हो घीसू । अब अपने वो दिन थोड़े रहे...साली बोटी-बोटी तो झलकने लगी है । भगमान इहां जाने की तैयारी है अब...परतिच्छा है कब बुलावा आ जाय...

—मगर मन पर लगाम नहीं होता बिछावन । दुख्खन काका ने कहा ।

—सो तो ठीक है काका । बुढ़ापा आवे से मन थोड़े बुढ़ावे है...एही खातिर तो बुढ़िया पड़ी है ।—बिछावन ने अपनी सफाई पेश की । बात थम गई ।...

बूढ़ों की चीलम चढ़ी—हुक्का गुड़गुड़ाने लगा । पुनः नई शंका उड़ी ।

—घाट पर का कोई मजूर होगा ।

—नहीं, मजूर नहीं हो सकता—सब के पास तो मेहरारू है । पसीना खटा के पेट पालता है तो उसे दोषी ठहरात हो गरीब है इसी लिये न !

भिक्खन आँखें तिरेर कर बोला । वातावरण गर्म हो गया ।

——नौटंकी देखने प्यरिआ शहर गई थी । किसी छोकरे से होड़ कर आई होगी, वही साला बदला लेने आया होगा । शहरी को दोषी ठहराओ, तब न हिम्मत जंचे ।

घीसू ने ठंडक लाने की कोशिश की...

—ना भिक्खू ! शहरी तो शिच्छित होते हैं। इ कीड़ा उनके दिमाग में काहे काटेगा।

—तो होगा काई मियाँ-टियाँ। भिक्खन लापरवाही से बोला।

बात बढ़ती देख, काका ने जमघट तोड़ने की आज्ञा दी और स्वयं उठकर सोने चल दिये। एक-एक कर सभी खिसकने लगे।...



घूरे की अग्नि हुकुर-हुकुर कर रही थी। सभी मछुवे जा चुके थे। केवल रहीमन आग तापता हुआ कुछ सोच रहा था। होने वाली बहस, उसने भी सुनी थी—मगर बीच में उसने कुछ टोक-टाक नहीं किया। केवल बीड़ी फूंकता रहा।

रहीमन ने सोचा—इस टोली में आय तो उसे १५ दिनों से अधिक नहीं हुए। मगर लोग उसे कित्ता मानने लगे हैं, किसी ने उस पर शक तक नहीं किया। एक दिन खुद काका ने भी उसको कित्ती तारीफ की थी।

मगर प्यरिआ ? रहीमन के मन में आंच धुधकी। गर्मी उमस आई।...

वह बिचारा तो जाल बुनना भी नहीं जानता, वही तो शिच्छा देती है। कभी वह पूछती—'रहीमन, अभी कौन हवा बह रही है ?' वह कहता—'इ तो पुरवा है।' वह खिलखिला कर हँस पड़ती। फिर कहती—'नहीं रे, इ तो पछिमा है।' और मात खाकर वह लजा जाता।

लाख रोकने पर भी तो वह अपने को थाम नहीं पा रहा

था। घूरा तापने जब सब सांझ को जुटते तो वह भी जुटता। उसका का दोष ? प्यरिश्रा भी तो वैसी ही है, बराबर ताका करती है—बस उसी की तरफ।

आग बुझने लगी। उसने फूंक मार कर जगाई। वह सोचने लगा—प्यरिश्रा की आँखें भी तो उसी की तरह पिश्रारी है।...जब धोती लपेट कर जाल फेंकने लगती है तो और भी भली लगती।...उसका वह रूप उसे डसे जा रहा था।...कई बार उसने सोचा था कि वह उसे...। परन्तु उसके कुछ बोलने के पूर्व ही वह कहती—'रहीमन रे, कहूँ काम धर ले। तब तेरा बिश्राह जल्दी ही श्रब्दुतला काका की छोकरी रकैया से करा दूंगी। श्ररे, नाव छोड़कर जहाज में घूमियो—ससुर सारंग मिलेगा।' वह कुछ बोलता नहीं। सोचता क्या जवाब दे... जब-तक वह सोचता, तब-तक वह चली जाती।

...वह एकांत खोजता...। मगर प्यरिश्रा भी तो एक घाघ...। जब कुछ कहती तो सबके सामने। वह कटकर रह जाता। मन में एक चोर पैठ गया था सो भीतर-ही-भीतर धुनियाने लगा और एक दिन मौका पाकर उसने...

मगर कित्ती चालू है प्यरिश्रा, सारी रात कछार पर ही रह गई।...

अच्छा हुश्रा किसी ने उस पर शक नही किया। तभी भिक्खू की बात याद आई—'होगा कोई मियां-टियाँ।'... वह भी तो मियां है, नहीं ऐसा नहीं हो सकता।... तभी कोई माल का जहाज भोंपू देने लगा। रहीमन जैसे जग गया। घूरा श्रब तक बुझ गया था।

सांझ फिर टोली जम गई। जमघट लगा। खर-पात जुटाया गया। घूरा फट-फट जलने लगा। फिर वही पुरानी बहस···

अरक लेकर पिअरिया आई। बात पहले की तरह थम गई। वह अरक उड़ेलने लगी, उसमें कोई अन्तर नहीं था।

काका ने पूछा,

—कोई जुलुम तो नहीं हुआ पिअरिया ?

—जुलुम काहे का काका, ईंट जोड़ चुकी हूँ···कल···

—कल का ?

—कल चूना भी भर दूंगा।

—सो तो ठीक है, खोज तो काफी की। मगर मालूम ही नहीं कौन हरामी था ?

—जाने भी दो काका। होगा कोई मुंह झोंसा, पकड़ पाती तो बोटी-बोटी नोच लेती···रहीमन की प्याली में अरक डालती हुई वह बोली।

रहीमन ने उसे गौर से देखा। उसे वह भली लगी। बस करो उसने मनह किया।···'अरे लो भी, कहोगे परायी टोली में खाने भी नहीं दिया—सुखाकर कांटा बना दिया···। पिअरिया की जिद वह टाल न सका।

सभी घूरे के निकट थे। अंधियारा झुक आया। रहीमन जमघट से उठकर बाहर आ गया।···पिअरिया की नजर उस जगह पड़ी। जगह खाली थी। उसे बुरा लगा।—'बड़ा रंगबाज है। दो पल बैठता भी नहीं जमकर—जरा जी भर देख लेती तो जाने कौन सा निगल जाती···।' उसका जी उचट गया। वह वहां से टल गयी, बालू पर चलना उसे

प्यारा नहीं लगा ।

अभी दूर ही थी कि उसे दीवार के निकट कोई दिखा । वह जल्दी-जल्दी आगे बढ़ने लगी ।

—चस्का लग गया है, हरामी कहीं का ।

वह और आगे बढ़ आई। वह आदमी दीवार से सटा था ।

—हरामी फिर दीआल पर हाथ धरता है…।

वह बुदबुदाई हुई कुछ आगे बढ़ी,…उसे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ ।…यह तो रहीमन था—एक हाथ में डोल, दूसरे में कूची…। वह दीवार पर चूना कर रहा था ।

वह उसे तकती रही… तकती रही…।…रहीमन बोला—'अब तो भर गया न ?…' पिअरिया लजाकर दुहरी हो गई, उसे बोटी-बोटी नोचने की बात याद नहीं रही…वह सब, कुछ भूल गई । बड़ी मुश्किल से लजा कर बोल पायी—'हां रे, अब तो 'सब' भर गया ।…

दूर मछुओं का संगीत पानी की बाहों में तैरने लगा

असाढ़-सावन पानीया बरसाय
हाय रे…हाय,
नदी-नाला सभी मरी गेल—सभी मरी गेल…

अलविदा



जिलाधिकारी के समक्ष दिये गये वृत्तान्त का हिन्दी में अनुवाद—

फार्म संख्या······६ बी०

जिला दफ्तर······मुंगेर, बिहार प्रान्त

जिलाधिकारी का नाम···मुहम्मद एम० ए० कमाल

तिथि·········मई १. '५८

विषय·········रहस्यमय रूप से जॉन सामुएल पैंजी का शून्य में लुप्त हो जाना।

प्रेषित-वृत्तान्त

परिचय:—

गवाह का नाम······जोनाथन यूजिन पैंजी

आयु···········२५ वर्ष

पेशा···············बेलदारी

निवास-स्थान·········पैंजी कॉटेज, नं० १६, पीपल पांति-मुंगेर।

पत्नि का नाम······एगनेस मार्ग्रेट पैंजी

वृत्तान्त —

इधर तीन वर्षों से, पिता की मृत्यु के पश्चात्, मैं—जोनाथन यूजिन पैंजो सपत्निक अपने छोटे भाई जॉन सामुएल के साथ, पैंजी कॉटेज, नं० १६ पीपल पांति में रह रहा था। मेरा भाई लगभग २० का होगा। हजूर! वह बड़ा ही नेक और नरम दिल का था। सारा गाँव उस पर अपनी जान

उड़ेले चलता था। खास कर पादरी स्टीफन की छाकरिया तो उस पर बे-तरह गिरी जाती थी। पिता के बाद सैलविया उसके लिए एक सहारा बन गई थी।······मगर हम लोगों का पेशा ही ऐसा है कि पादरी साहब को यह सम्बन्ध मुआफिक न गुजरा। हजूर! बेलदारों का काम ही क्या है?···आज यह कब्र खोदना, कल वह कुआं···। आप निश्चित ही जॉन और सैवलिया के सम्बन्ध में कुछ जानना चाहेंगे।···

जैसा नेक मेरा जॉन था, उससे कुछ कम नेक और हसीन सैलविया नहीं थी? पराई लड़की ठहरी, मगर गुणों का बखान करने में कन्जूसी नहीं कर सकता। चाँदनी की परत लिपट कर उसकी सूरत पर अँगड़ाई लेती···आँखों में बहारें झूलतीं···खुमारी नाचती! जवानी का मौसम था, कदम पिये जैसे डगमगाते-बिन पिये, बाहें बहकतीं·····ऐसा ही वह आलम था हजूर!

नित्य वह कब्रगाह पहुँच जाया करती। उसके हाथों में फूलों का 'बंच' रहा करता। मेरा विचार है, वह पिता से शायद यह कह कर जाया करती थी कि वह माँ की कब्र पर फूल सजाने जाती है। वह कब्र के समीप बैठ जाया करती माँ की याद में दो आँसू चुनती···फिर मोमबत्ती जला कर गई आत्मा के लिए, घुटने टेक प्रार्थना करती। उस समय स्वेत फ्राक में वह बड़ी भली जंचती। फिर किसी की प्रतीक्षा में उसकी आँखें नम पड़ जातीं। एक गम गमकने लगता। सच कहता हूँ हजूर, ईसा मसीह गवाह हैं, यह गम की घटा मेरे जॉन को देखते ही काफूर हो जाया करती और चाँद घटाओं का चिलमन उठा, मुस्का-मुस्का के झांकने लगता। दोनों का

एक दूसरे से बहुत-बहुत जी लग गया था। परन्तु परिणाम की कल्पना कर जब कभी मैं जॉन को इस डगर पर चलने से सावधान करने की सोचता, उसकी भाभी एगनेस राह में आ जाया करती। कहती—'ऐसा मत करो, पापा के बाद तो बेचारा जॉन सैलविया का ही मुख देख कर सांस ले रहा है। उसे दुख मत दो—वह नहीं जानता कि वह क्या कर रहा है।' और जॉन की भाभी की सौंगध, में गुम पड़ जाता।···

हजूर! चाँद भी तो पन्द्रह दिनों के बाद खो जाता है और जब दोबारा नुमायाँ होता है तो विधवा की टूटी चूड़ी समझिये। बस यही मानिये—यह प्यार-मुहब्बत १५ दिन का एक तमाशा है···और मेरे अजीज भाई जॉन को अकेला छोड़ सैलविया भी गुम हो गई। वह गरीब बहुत-बहुत रोया। कब्र तो हम दोनों ही खोदते थे, मगर अपनी प्यारी सैलवयिा की कब्र उसने खुद खोदी—मुझे हाथ तक नहीं लगाने दिया। इस घटना को आज छः महीने निगल गये।···

हजूर! इसी २५ ऐप्रिल की सुबह, हमारे पड़ौसी फ्रांको ने सैल की बगल में एक कब्र खोदने का आदेश दिया। हम दोनों भाई, बेकार थे ही, हमने काम कर लिया। पूछने पर पता चला कि हमारे प्यारे पादरी स्टीफन भी हम ईसाइयों को ख्रीष्ट के हाथों सौंप, खुद चले गये। नेक इन्सान थे··· धर्मात्मा थे···निश्चय ही स्वर्ग गए होंगे।

हम दोनों भाई, सीढ़ी, डोल और कुदाल लेकर कब्रि-स्तान चले। सूर्य डूबने के पहले तक लाश दफना जानी चाहिए, इसी कारण हम दोनों भाई जल्दी-जल्दी हाथ चला रहे थे क्योंकि दुपहरिया अब ढलने-ढलने पर थी। सीढ़ी से

जॉन नीचे उतर गया और मैं बीचों-बीच सीढ़ी पर खड़ा था। बाल्टी में मिट्टी भर, मुझे थमा देता और मैं बाहर फेंक देता। हुजूर ! आज तक एक कब्र पर इतनी मेहनत नहीं करनी पड़ी थी। यह कब्र सब कब्रों से बड़ी है, विश्वास न हो तो देखने में कोई आपत्ति नहीं है। पादरी साहब छः फीट से कुछ ऊपर थे, इसीलिए बक्स काफी लम्बा बना था। और इसी कारण कब्र भी काफी लम्बी खुदी थी।

जब कब्र खुद चुकी तो जॉन ने मुझे आवाज लगाई। मैं अब ऊपर आ चुका था। जब तक मैं नीचे उतरूँ वह खुद ही ऊपर आ गया। आते ही उसने मुझे एक अँगूठी थमा दी। उसका रंग बिलकुल स्याह पड़ गया था। परन्तु साफ करने पर साफ हो गया कि वह सोने की थी। जॉन ने कहा—'भैया, ये पादरी के लिए खुदी कब्र से निकली है, इस कारण इस पर उसका अधिकार है। क्यों न हम इसे भी पादरी साहब के साथ गाड़ दें ? यह बात कुछ हद तक मुझे भी जँच गई। हुजूर ! मेरा भाई जॉन, बहुत ईमानदार और नेक था—यह एक और वजह से थी जिस कारण मैं उस पर जान लगाये रहता था।

शाम करीबन पाँच के पादरी साहब की लाश लायी गई। लोगों की उदास भीड़ थमी थी। अधिकांश काले लिबास में थे···काला रंग ग़म का अपना होता है। बक्स में रक्खी लाश दो बाँसों के बीच झुला दी गई। पादरी ने बाइबिल पढ़ा··· विदाई का गीत गा कर आत्मा विदा की गई—

'जाओ·· जाओ···

ओ ! पवित्र आत्मा

तुम मरे नहीं—
नींद में सोये हो,
केवल मिट्टी की देह—
माटी में मिली है,
तुम तो अमर हो,
उस दिन—
(न्याय के रोज)
नरसिंघे की—
आवाज़ पर उठना,...
आना......पुनः आना,
आज जाओ—
ओ ! पवित्र आत्मा,
अलविदा......अलविदा...!

सभी आँसुओं में डूब गये। बक्स रस्सी के सहारे कब्र के भीतर छोड़ा गया। तब एक नए पादरी ने एक मुट्ठी मिट्टी कब्र में छोड़ी, फिर सभी लोगों ने......और सब रीति पूरी कर ग़मज़दा कारवाँ लौट गया। मैं और जॉन कब्र भरने लगे। उसने चाहा कि अंगूठी भी भीतर डाल दी जाये परन्तु मैंने समझाया—'जाने वाले तो गये, अंगूठी का वह क्या करेंगे ? फिर स्वर्ग में तो सोना-चाँदी का मोल ठहरता नहीं। रहने भी दो, यह हमारे सुख-दुख में काम आ सकती है।' वह सहमत हो गया। कब्र पर से हम वापिस लौटने लगे। शाम ढलने पर थी और झुरमुटों से रात झाँकने को तैयार......।' अंगूठी जॉन ने पहन रखी थी।

अभी घर दूर ही था कि वह किसी से ठहर कहने लगा—

'जी मैं ?······पादरी साहब की कब्र भर कर आ रहा हूँ। बेचारे की साँसे दगा दे गईं, बड़े भले थे।' मैं भौंचक्का रह गया क्योंकि मुझे छोड़ और कोई तीसरा था ही नहीं। मैंने पूछा—'जॉन, कौन था ?' वह बोला 'कोई बूढ़ा था। तुमने देखा नहीं ? बाल कितने उजले, जैसे चूना की सफेदी······मगर चलता था सीधी चाल में, एक कौड़ी भी झुकान नहीं।'···मुझे काटो तो खून नहीं। मगर मैंने खामोशी का साथ दिया। घर करीब आ गया था, तभी उसने लपक कर कुछ पकड़ लिया—'भैया देखो न, कितनी प्यारी मुर्गी है—मिनार्का या हैगहार्न ?' मैंने देखा हाथ खाली। वह फिर बोला—'रोस्ट उम्दा रहेगा। मगर पराई चीज पर नजर नहीं डालनी चाहिए इसे छोड़ देता हूँ।' उसने हवा में हाथ झटका। मैंने सोचा शायद कब्रिस्तान की बुरी हवा उस पर असर कर गई है, इसी कारण औल-फौल बक रहा है। ठीक हो जायेगा। मैंने सलाह दी—"जान' अँगूठी उतार कर जेब में रख लो। भाभी को मत दिखाना। औरतों के आगे छिपी बातें बिखेरनी नहीं चाहियें—वे बड़ी मुँह-फट हुआ करती हैं।" जॉन ने बात मानली।

दूसरी सुबह याने २६ की भोर, हम दोनों भाई लकड़ी काटने के विचार से जंगल चले। उसने जेब से निकाल कर अंगूठी मुझे थमा दी। कुछ आगे निकल आने पर मुझे गाछ में पके-पके आम नजर आये। मैं स्वयं घबड़ाया कि अप्रिल के महीने में आम क्योंकर पकने लगे इसे तो मई में पीला होना था। परन्तु वही आम थे, एक की कोई बात नहीं थी

मेरे हाथ बढ़ाते ही जॉन ने टोका—क्या कर रहे हो भैया ? मैंने उत्तर में कहा—कितने रस भरे और पीले आम हैं, कुछ तोड़ने का इरादा है। इस बार वह हँसा—भैया ! दिमाग तो नहीं बिगड़ गया है ?......यहाँ तो एक भी पेड़ नहीं। ....मैं घबड़ाया। दोबारा जो देखा तो पेड़ नदारत !

दिन ढ़ले, लौटते समय......मैंने वह अंगूठी उसे दे दी। जब जंगल हम छोड़ने-छोड़ने पर थे, वह अचानक ठिठक गया—क्या सुन्दर मकान है !......मगर यह यहाँ आया कैसे ? आते समय तो था नहीं। मेरी तो हालत पस्त। अरे जॉन ! होश में तो हो न ? यहाँ कोई घर-वर नहीं है। मेरी ओर निहार, अजीब मुस्कुराहट लबों पर लाकर वह बोला—'लगता है तुम्हारी आँखें जवाब दे गईं। तुम्हें दिखता नहीं ऊपर वाले ओसारे पर सैलविया बैठी है.........।' उसकी बातें सुन कर मुझे लगा कि वह पागल हो रहा है। मैंने उससे घर लौट चलने का आग्रह किया। कुछ रूक कर उसने कहा—'भैया तुम यहीं ठहरो—बस एक मिनट...मैं अभी आया, वह मुझे बुला रही है।' और वह आगे बढ़ गया।

न सीढी...न ओसरा...न मकान ! मगर वह सीढियाँ चढने लगा। हवा में उसके पैर उठने लगे। वह जमीन से ऊपर उठकर बिना आधार के खड़ा हो गया। मैं भय खा गया—या ईसा-मसीह ये क्या ?...फिर उसने हवा में किसी से हाथ मिलाया। मैं ठहरा रहा। वह किसी से बात करता रहा......मगर जवाब देने वाला कोई था नहीं। फिर भी हँस-हँस कर जॉन बातें कर रहा था। तभी उसने आवाज़

लगाई—'भाई साहब ! तुम भाभी को लेकर पुराने प्रोटेस्टेंट गिरजे आओ। हम शादी करने जा रहे हैं। स्टीफन साहब स्वयं अपनी पुत्री का विवाह देंगे।' इतना कह वह आगे बढ़ गया।......मैंने देखा, उसके साथ दो फीकी छायाएं थीं जिनमें एक बहुत लम्बी। फिर तीनों शून्य में डूब गये...हमेशा-हमेशा के लिये गायब।

मैं अकेला घर लौट आया। भय और चिन्ता से मैं सर्द पड़ गया था उसी क्षण, मैंने मुखिया जी से इस घटना का उल्लेख किया। सारा गाँव जानता है। हजूर विश्वास के लिए पूछ लिया जाये..।

मेरा भाई कहाँ और कैसे खो गया—मैं खुद नहीं जानता हजूर ! परन्तु इतना मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि इन सारी फसादों की जड़ वह कब्र वाली अंगूठी है।

...मैं सौगंध लेकर कहता हूँ कि मेरे द्वारा प्रेषित उपर्युक्त वृत्तान्त अक्षरशः सत्य और सही है।

(हस्ताक्षर) जोनाथन यूजिन पेंजी

गवाह:—

(हस्ताक्षर) मुहम्मद एम० ए० कमाल

जिलाधिकारी, मुंगेर, बिहार प्रान्त

<u>हिन्दी अनुवादक:—</u>

श्री मुरली तिवारी

(पीपल पांति) मुंगेर।

बयान देकर जब वह घर लौटने लगा तो सभी मिलने वालों ने रहस्यमय रूप से उसके भाई जॉन के लुप्त हो जाने

पर, उसके साथ हमदर्दी ज़ाहिर की। वह खुद इतना उदास था कि जैसे उसका सब कुछ खो गया था।

मगर रात, हँसी उसके अधरों पर लौट रही थी। पत्नि ने कहा—'मगर न वह सैलविया से प्रेम करता था, न सैलविया ही उससे...।' वह बोला—'नहीं करता था तो क्या हुआ ? मैंने तो कह दिया है—करता था। अब न सैलविया है, न उसका बूढ़ा बाप स्टीफन...पुरवा-साक्षी तो हो नहीं सकती। पत्नि फिर बोली—'कहीं बात खुल गई तो ?' वह बोला—बात खाक खुलेगी, सब तो यही जानते हैं कि जॉन गायब हो गया है...किसी को सपने में भी ख्याल नहीं आ सकता कि मैंने उसकी हत्या कर दी हैं।...बराबर झुका करती थी कि कोई उपाय करो न, एक ही तो मकान है—उसमें भी आधा जॉन ...इतनी जरा सी तो ज़मीन है—उसमें आधी जॉन ! अब सब पर अकेली ही राज करो न—रानी क्या, महरानी बनकर। पत्नी हँसी भविष्य सोचकर, मगर जबान हिली—'पकड़े गए तो ?'...उसने पत्नी को करीब कसते हुए कहा—धत् बावरी, आज की पुलिस बिचारी, असली अपराधी को पकड़ने में हरदम धोखा खा जाती है। तुम्हीं देखना, वह अंगूठी के जादू पर विचारेगी, जंगलों में भटक कर उस मकान की तलाश करेगी जहाँ जॉन गायब हो गया है...और कुछ पता नहीं लगा सकने पर पस्त होकर शाँत बैठ रहेगी ! एगनेस, पुलिस को इतनी फुर्सत कहाँ कि पादरी की कब्र खोद कर देखे !... फिर एगनेस ने कहा—'जॉन ! क्षमा करना भैया के अपराध... अच्छा, अलविदा...अलविदा...! फिर दोनों की हँसी छा गई।

('वुड' की कथा-शैली)

आत्मा और सूखे बेले

● ● ● ●

हलकी ख़ामोश शाम, निहायत ख़ामोशी से, ख़ामोश रात में ढल गई।……

धरती पर अलग-अलग लोग, फर्क-फर्क रंग, तरह-तरह की सूरतें—सभी एक-दूसरे से भिन्न ! परन्तु स्वर्ग में केवल आत्माएँ……आकार-प्रकार से शून्य। कोई भी आत्मा, दूसरी-तीसरी में किसी प्रकार की तमीज़ करने में असमर्थ—केवल स्वर।

धरती जिस प्रकार घूमती है, घूमती रही। एक स्वर (आत्मा) इसी तनहाई की तनहाई में, स्वर्ग के एक शान्त कोने में बैठा कुछ खोज रहा था। धरती घूमती रही।…… तभी एक दूसरी आत्मा उसके निकट आई और उसी की तरह टिक कर बैठ गई।

स्वर ने उसे देखने की चेष्टा की—'मुझ में और तुम में कोई अन्तर नहीं।' दूसरी आत्मा बोली—ये 'अन्तर' नाम की वस्तु, धरती के लोगों की अपनी उपज है। यहाँ, हम सब ईसा-मसीह में लय होकर, माया से परे हो गये हैं। पाप-मुक्ति के कारण ही हमारी भावनाएँ स्वच्छ हो गई हैं—इसी कारण हमें एक-दूसरे में अन्तर नहीं दीखता। काश !…हम धरती पर भी ऐसे ही होते।

उसकी बात सुनकर भी स्वर (पहली आत्मा) कुछ टटोलता रहा। फिर थक कर आप ही ऐसी आवाज से बोला, जैसे बहुत ऊब गया हो—'ओह ! मिलती ही नहीं।' आत्मा ने पूछा—'क्या चीज ?' स्वर फिर भी खोजता हुआ बोला—'गंगा नदी।···वहाँ मैं बेले के फूल बहा आया था।'···धरती घूमती रही।

दूसरी आत्मा ने ठहर कर पूछा—कब ?—स्वर ने उसी शून्य में उत्तर दिया—आज से पहले···बहुत पहले !—आत्मा उसके इस उत्तर पर मन ही मन हँसी—'कैसा सनकी है ? अब भी फूल खोजता है। स्वर्ग में आकर भी सांसारिक वस्तुएँ भुला न सका ! आश्चर्य है······' फिर प्रगट रूप में बोली—'फूल तो कब के बह गये होंगे, अब नहीं मिलने के।'

स्वर और झुकता हुआ बोला—'ठीक तो, देखो न, मैं भी कैसा हूँ ?······परन्तु यह रही गंगा नदी, और यह देखो, मुंगेर का कष्टहरणी घाट। यहीं मैं फूल बहाकर आया था।···'

आत्मा ने प्रश्न किया—'मगर फूल आये कहाँ से ?···' इस बार, स्वर के लिए चुप रहना या थोड़े में उत्तर देना सम्भव नहीं।······

उसने खामोशी तोड़ी—

उस दिन जब नित्य की तरह मैं इला के घर पहुँचा, तो देर कुछ अधिक हो चली थी। शाम सरक गई थी, चुपके-से, जैसे किसी युवती ने अपनी ओढ़नी रख, रात की काली शाल ओढ़ ली हो। इला आई, सिर झुका था, बाल खुले और बिखरे, लेकिन ऐसा तो सदा ही रहता था। मैंने धीरे से कापी खोल ली,

सबक पूरा नहीं हुआ था, लेकिन वह तो अक्सर नहीं होता था, इसमें नया क्या ? पहली बार, मुझे याद है, जब ऐसा हुआ, तो मुझे बड़ा क्रोध आया और मैंने उसे ज़ोर की एक चपत जमा दी थी।

परन्तु धीरे-धीरे मैं आप ही सब-कुछ समझ गया था। इला बोलती बहुत कम थी या यूं कहिए बोलती ही न थी। उसकी ज़बान उसकी मासूम चुप्पी में, उसर स्थिर आँखों में बस गई थी।

घर में वह अकेली लड़की थी। पिता की मृत्यु हुए कुछ दिन हो चुके थे। भाई का विवाह पिछले दिनों हुआ था। भाभी नई-नवेली थी। उसकी आँखों में रंगीन स्वप्न थे, कमल के; गुलाब के; लिली के; बेला के मुस्कराते फूल थे और थे सिनेमा के रंगीन पर्दे। उसे इतनी फुर्सत कहाँ कि घर के कामों में हाथ बटाए ? माँ बूढ़ी हो चली थी। हाथों में इतनी शक्ति कहाँ, आँखों में इतनी ज्योति कहाँ कि घर के काम सम्भाले ? घर में कोई नौकर, कोई नौकरानी नहीं थी, रखना भी कठिन था। ले-देकर बचती थी इला। सुबह धुँधलके में ही उठकर चूल्हा फूंकने बैठ जाती। स्कूल से लौटती, फिर चूल्हे में जुत जाती। आज किसी चीज़ में नमक कम है, तो कल किसी में अधिक, देर हो जाने का भय अलग। और इसी सबके बीच भाई की झिड़की, भाभी के ताने और माँ का चिड़चिड़ाना बराबर जारी रहता।

पढ़ाई समाप्त हो चुकी थी। इला उठी और कापी-किताब समेटने लगी। तभी उसका अस्फुट, अस्पष्ट स्वर सुन पड़ा—"कल से नहीं आइएगा मास्टर जी !"

इससे पहले कि मैं कुछ सोचता, कुछ समझता, कुछ बोलता, वह जा चुकी थी। जहाँ वह बैठी थी, वहाँ मुझे लगा टेबुल कुछ गीला था। बाहर अँधेरा और घना हो चूका था, मानो प्रकाश के रहे-सहे कण को भी अपने में समेट लेना चाहता हो। स्वर के चुप होते ही आत्मा ने चाहा कि वह कह दे कि वही तो उसकी......। स्वर कहने लगा।

मैं चलने को हुआ, तभी इला की माँ आ गई—"मास्टरजी, कल से इला की पढ़ाई बन्द।" और इसके साथ ही उसने पाँच-पाँच के तीन नोट बढ़ा दिए। जी में आया साफ इन्कार कर दूं, जी में आया टुकड़े कर दूं; लेकिन फिर हाथ आप-ही-आप यान्त्रिक-गति से बढ़ गए।

फाटक के पास बेल के दो-चार पौधे थे। इला ने अपने हाथों उन्हें रोपा था, सींचा था। बेले के सफेद फूल उसे बहुत पसन्द थे। वहीं एक फूल अपनी टहनी से, अपने गुच्छे से अलग हो भूमि पर पड़ा था। मैंने उसे उठा लिया, कितनी मीठी सुगन्ध थी, फूल ताजा था।

तभी कानों में इला की भाभी के कुछ शब्द गूंज गए—"हाँ माँ, बहुत अच्छा किया तुमने मास्टर छुड़ा कर। आखिर हम कहाँ से इतना पैसा ला सकते हैं, अपनी आगे की जिन्दगी के लिए भी तो कुछ सोचना है। और फिर मेरी पढ़ाई किस दिन काम आनेकी? मैंने भी तो बी० ए० तक पढ़ा है। मैं इला की मदद करूँगी।"—मेरा अनुमान सही सिद्ध हुआ था।

तो ये लोग मात्र पैसे ही के लिए मुझे छुड़ा रहे हैं! मैं यह जानता था कि इला की भाभी को कभी इतनी फुर्सत

न मिलेगी कि वह इला की सहायता कर सके। यह भी जानता था कि इला मेरे साथ जो डेढ़-एक घण्टे पढ़ लिया करती थी, इसकी भी फुर्सत उसे न मिलेगी। और परीक्षा को बस एक ही महीना तो रह गया था। इला असाधारण प्रतिभा की लड़की हो, ऐसी कुछ बात नहीं। फिर भी मुझे लगा, उसे पास होना ही चाहिए। मध्यम वर्ग की लड़की, यदि वह पढ़ भी न पाई, तो कौन उसे उठा ले जायगा ? और भविष्य एक विकराल रूप धारण कर मेरी आँखों में नाच गया।

कदम भारी हो रहे थे। ऐसा लगता था, जैसे घर कहीं दूर सरक गया है, जैसे रास्ता कभी समाप्त ही न होगा। मैंने निश्चय कर लिया था कि मैं इला की पढ़ाई जारी रखूंगा, रुपए की मुझे परवाह न थी।

श्रीमती जी के हाथों में नोट सरकाए, तो एक अरसे से उनके मुरझाए चेहरे पर हंसी तैर गई।—"बड़े अच्छे समय पर लाए। देखो ना, मुन्ने का जूता बिल्कुल फट गया है।" जी में आया कह दूं कि ट्यूशन छूट गई है, लेकिन फिर जाने क्यों अपने आपको रोक लिया।

दूसरे दिन, नित्य की तरह चौराहे की नुक्कड़ से बाईं ओर मुड़ने को हुआ, तो अचानक वकील मित्र शान्तिप्रसाद मिल गए। कहने लगे—"भाई बड़े मौके से मिल गए। मैं तो सोच ही रहा था तुम्हारे पास जाने की।"

मैं घबराया, एक वकील को भला एक साधारण शिक्षक से क्या काम ?

वे कह रहे थे—"एक मास्टर की तलाश है। एक अपना

ज़माना था कि जाना ही नहीं, प्राइवेट ट्यूशन कहते किसे हैं ? एक यह ज़माना है कि बिना ट्यूशन के लड़के पढ़ते ही नहीं। चार लड़के हैं, दो दसवीं में, दो आठवीं में। अधिक नहीं, यही कोई दो घण्टे पढ़ाना है और तीस रुपए मासिक। कहो मंज़ूर है ?"

चाहा कह दूं मुझे तो अभी फुर्सत नहीं है, लेकिन शब्द हलक से लौट गए, एक कड़वी घूंट ने उन्हें निगल लिया। मुन्नी की रोनी सूरत याद हो आई, जब उसे किताब के लिए जिद करने पर झिड़क दिया था। विंभा की साड़ी, जो तार-तार हो चली थी, नज़रों के सामने लहरा गई। और उन्होंने इला के बिखरे बालों को, उसकी स्थिर आँखों को ढंक लिया, छिपा लिया। मैंने ट्यूशन मंज़ूर कर ली। वकील साहब हाथ मिला रहे थे—"तो फिर तय रहा, कल से इसी वक्त।" मैंने चुपचाप सिर हिला दिया।—आत्मा ने पूछा—तो तुम विवाहित······? स्वर ने कहा—हाँ ! तो आगे सुनो।

मैं बाएं न घूमकर, दाहिने घूम गया—कष्टहरणी घाट की ओर। बच्चे पानी में कागज़ की नाव तैरा रहे थे, कंकड़ी फेंक रहे थे, कहीं प्रणय का अभिनय चल रहा था और पानी उद्दाम वेग से निबोध रूप से कल-कल कर बहता जा रहा था—जैसे कहीं कुछ हुआ ही नहीं। हाथ अनायास ही कुरते की जेब में चला गया—बेले का वह फूल था, जो कल मैंने इला के फाटक के निकट उठाया था। लेकिन कल यही फूल ताज़ा था, कल मैंने इसे जी-भर कर सूंघा था, आज सूंघा नहीं, पानी में बहा दिया, फूल मुर्झा चुका था। ढलते सूरज की लाल किरणें पानी में दूर, बहुत दूर तक फैल गई थीं। और अचानक

मुझे लगा यह सूरज की किरणें नहीं, मेरी अपनी आत्मा का सुर्ख लहू है, जिसे गंगा की निर्मल धारा भी न धो पाएगी। और मुझे रह-रहकर जौनपुरी की वे पंक्तियां याद आने लगीं, जो कभी मैंने उद्धरण के लिए इला को लिखाई थीं—

"तुमने सूखे हुए बेले भी कभी सूँघे हैं ?
उनको मसला न करो।
कितनी आज़ूर्दा मगर भीनी महक देते हैं,
उनको फेंका न करो।"

अपनी दास्तां सुनाकर स्वर शांत हो गया। तभी आत्मा ने प्रश्न किया—इला तुम्हें चाहती थी ?

—निश्चित रूप से—स्वर ने उत्तर दिया।

—और पत्नि ?

—वह भी चाहती थी। परन्तु मैं तो इला को प्यार करता था।

—परन्तु तुम्हारी कहानी से तो ज्ञात होता है कि तुम अपनी पत्नी का भी ख्याल रखते थे···

—ख्याल अवश्य रखता था। केवल इसीलिये कि वह पत्नि थी···उसे कपड़ा देना था, उसे खाना देना था; क्योंकि उसने इसके बदले में मुझे······।

दूसरी आत्मा ने स्वर की ओर सिर उठाकर कहा—'धरती पर पवित्र प्रेम की बेकद्री करने वालों की संख्या में कमी नहीं; परन्तु अब तो स्वर्ग भी·········, वह रोआंसी हो गई, शब्द उसके गले में अटक गया। वह उठ कर जाने लगी।

स्वर, सूखे हुए बेले खोजने में पुनः मशगूल हो गया।

उसकी नजरों में इतनी शक्ति कहाँ थी कि वह यह देख सके कि 'पवित्र प्रेम' को कितनी ठेस लगी थी।……और उस सूखे हुए बेले से भी ज्यादा सूख कर, उस पर विश्वास करने वाली उसकी पत्नि विभा अभी-अभी उठकर उसके पास से गई थी।………

—(आधारित)

सूखा पेड़ : सूखी नदी

मन से ज़्यादा ताकत उम्र के पास है। इस नये-पन के सन में, मन संयमित किया भी जाय तो उम्र की ताज़ी हवा उसे वश में रहने नहीं देती——मन अपने आप बहक जाता है। लेकिन मेरीना का मन जीत गया था, उम्र हार चुकी थी। मन खामोश रहना चाहता, उम्र खामोश रहने देती। टोकती नहीं...रोकती नहीं...। मेरीना अपनी सहेली मेविस के साथ एक ही रूम में रहती थी।

—

उस दिन महीना भर की नाइट-ड्यूटी की अंतिम सांस थी——आखिरी रात ! जब मैं रोज की तरह गई तो देखा कि बेड नं० ६ पर कोई नया मरीज आया था। नया था, इसी कारण मैं उसके पास चली गई। वह जाग रहा था। मैंने उससे हमदर्दी ज़ाहिर की...

——कोई तकलीफ तो नहीं है ?

——नहीं, केवल नींद...

——आ जायेगी।

मैं अपने कार्य में जुट गई।...जब दोबारा उसके पास गई तो वह जग रहा था। मैंने उसे सो जाने को कहा। मेरे पास पत्रिका थी। उसने पत्रिका मांगी। कुछ पढ़ कर वह

मुस्कुराया ।

—मेरीना, कुछ देर और रहा न, सुलाकर जाना ।

मैं घबराई, उसने मेरा नाम कैसे जाना ? यह पहला अवसर था जब मैं किसी रोगी से जवाब-तलब करने जा रही थी ।

—मेरा नाम कैसे जाना ?

—इस पत्रिका में लिखा है ।

मैं झेंप गई । वह हँसा । जाने क्यों मैं सारी रात उस मरीज के ही पास रही । राऊंड पर सिस्टर आई, उन्होंने मुझे टोका भी था—मुझे स्मरण है ।

समय के बहाव में, दिन बहने लगे । एडवर्ड में मेरी खास दिलचस्पी थी । इसका कारण भी था ।...पांच से सात का समय—अपनेपन के घंटे । मरीजों से मिलने वाले, नयी किरण बन कर आते । बाजू वाले बेड नं० ९ पर कोई रोगी था । उसे देखने, उसकी पत्नि, उसकी माँ, उसके भाई...बच्चे, सभी आते । उन्हें देख उसमें ताज़ी ज़िन्दगी फिरने लगती—वह अच्छा होने लगा था । यह सब देख कर भी एडवर्ड खामोश रहता । एक दिन उससे यह झेला नहीं गया—मेरीना, सब से सब मिलने आते हैं । ये मिलने वाले ज़िन्दगी के सहारे हैं—इन अवलंबों के भरोसे जिया भी जा सकता है । ये सहारे कितने तन्दुरुस्त और मज़बूत हैं । मगर मुझे···

—एडवर्ड, तुम्हें भी मिल जायेंगे ।...और मैंने हँसते हुए वह गुलाब का फूल जो मैंने कम्पाऊंड से तोड़ कर

लाया था, उसे थमा दिया। बड़े प्यार से उसने ले लिया।...

—करीब आओ न, मैं तुम्हारे जूड़े में लगा दूँ।

अपने उस मरीज से मैं 'न' नहीं कर सकी। उसने फूल लगा दिया। मैं हँस दी।

एडवर्ड की दशा में सुधार नहीं गुज़री। मैं परेशान रहती। जाने वह क्यों नहीं अच्छा हो पा रहा था। उसकी खाँसी दिन-ब-दिन बढ़ रही थी।

—लाओ, टेम्प्रेचर ले लूँ।...

—ओह! तुम आ गई। मैं तुम्हारी ही राह देख रहा था।

टेम्प्रेचर ले, मैंने ग्राफशीट पर निशान मिलाये।

—आज 'एक्स-रे' की रिपोर्ट आ जायेगी!

—आने दो,...मगर मैरीना—अस्पताल में तैरती हुई दर्द भरी साँसें, नर्सों की भीनी-भीनी चाल, 'बोलों' में उबलते औज़ारों की आवाज़, देशी-विदेशी दवाओं की मिली-जुली उड़ती महक—मुझे बहुत प्यारी लगती है। प्यारी लगती है—बस इसीलिये कि अस्पताली ज़िन्दगी में डाक्टरों की मेहनत है, नर्सों का अपनत्व है, तुम्हारी हमदर्दी है...'

अन्य मरीजों से फुर्सत पा, मैं एडवर्ड के पास चली आती। क्योंकि मेरी निकटता से वह आराम महसूस करता, इस दुख-दर्द से उसे कुछ राहत मिलती।

उस दिन उसे टी० बी० वार्ड भेज दिया गया। मैं घबराई। वहाँ ड्यूटी नहीं भी पड़ने पर मैं उसके पास जाया

करती। उसे मेरी हमदर्दी की ज़रूरत है—यह मैं जानती थी।

मैं उसके लिये फल ले जाया करती। मगर वह बिगड़ता ही गया।...बिगड़ता ही गया। और एक दिन उसे 'सेनेटोरियम' भेजने का प्रबन्ध कर दिया गया।' यह मेरे 'नर्स-जीवन' की सबसे बड़ी 'ट्रेजेडी' थी। मुझे सिखाया गया था—'रोगी के लिये नर्स को अपनी खुशी तक देनी होती है, तब वह अच्छा हो जाता है।'...मगर एडवर्ड अच्छा नहीं हो सका।...फिर भी मैं हारी नहीं। मैंने उसे अपना पता देकर कहा—'एडवर्ड! खत लिखते रहना, खत सूनेपन के दोस्त हुआ करते हैं।'...जबाब में, उसकी आंखें भर आईं।...

मुझे लगा बेड पर के सारे मरीज़ कराह रहे हैं। तभी बेड नं० १२ का बूढ़ा, खांसते-खाँसते बेदम होने लगा। मैं उसे सहारा देने बढ़ी। लेकिन मेरे पहुँचने के पूर्व ही, वह बेड से नीचे गिर गया था।...

एडवर्ड की चिट्ठियाँ आती रहीं। मेरा सहारा उसे जाता रहा। मैंने लिखा—'एडवर्ड, तुम जल्दी अच्छे होकर आ जाओ, मैं हर समय यही दुआ करती हूँ। कल 'सन्डे' था। मैं चर्च गयी थी, वहां मैंने मन्नत मांग रखी है। सरमन देने के पहले फादर ने बाइबिल पढ़ा—'खटखटाओगे, तुम्हारे लिये खोला जायेगा। मांगोगे, तुम्हें दिया जायेगा।'...मैंने ईसा-मसीह का द्वार खटखटाया है, मैंने तुम्हारी ज़िन्दगी मांग ली है...! एडवर्ड, तुम अच्छे हो जाओगे, मैं तुम्हें अच्छा देखना चाहती हूँ।...

फिर उसने लिखा—'मेरीना,' मुझे जिन्दगी के वे सारे सहारे, जो बहुत ही तन्दुरुस्त और मजबूत हैं—मिल गये हैं। अब मुझे अच्छा होना है, अपने लिए नहीं तो कम से कम उन मज़बूत सहारों के लिए।...'

मेरे 'नर्स' का जीवन खुश हो गया। मुझे सिस्टर की वह बात बड़ी प्यारी लगने लगी—'रोगी के लिए नर्स को अपनी खुशी तक देनी होती है—तब वह अच्छा हो जाता है।'...

कुछ दिनों बाद, उसकी चिट्ठियाँ बन्द हो गईं। मैं हैरान थी।...

उस दिन 'आफ' में, मैं अपने रूम में थी। 'विज़िटिंग' आवर था।...अपनेपन का समय। सभी नर्सें 'अपनों' के साथ थीं। तभी दरबान आया।

—मेम साब, आपसे कोई मिलना चाहते हैं।

—कह दो, अभी आई।

मैं ड्रेस करने चली गई।

जब लौटी तो मेरी खुशी का ठिकाना न रहा—क्योंकि वह एडवर्ड था। बिल्कुल भला चंगा।

—एडवर्ड, तुम अच्छे हो गये...

—हाँ, तुम्हारी वजह से !

मुझे यह अच्छा लगा। क्योंकि मैं आज जीत गई थी। मेरा नर्स जीवन जीत गया था। मेरी सिस्टर की सीख जीत गई थी।



एडवर्ड अब बराबर आने लगा था । एक रोगी की हैसियत से नहीं……! वह जबरन मेरे जूड़े में फूल लगाना चाहता । आखिर एक दिन मेरी जुबान खुल ही गई—'एडवर्ड' अब तुम मत आया करो । तुम रोगी नहीं रहे—तुम्हें नर्स की हमदर्दी की अब आवश्यकता नहीं । नर्स तो बीमारों का मन बहलाया करती है, अपनी खुशी तक उधार लगा देती है । नर्स, तुम जैसे भले-चंगों के लिए नहीं है ।' और मैंने जूड़े का फूल निकाल कर फेंक दिया । उसने एक बार मुझे देखा और फिर वह फेंका हुआ गुलाब उठाकर चला गया ।

मैंने उसकी परवाह नहीं की—क्योंकि मैं नर्स थी ।……

●

मेरा नर्स-जीवन अपने में पूर्ण था । उस दिन की डाक में मुझे एक पेंटिंग मिली । …एक सूखा पेड़, पत्तियाँ नहीं… हरापन नहीं । नीचे लिखा था—'सौरो' । मैं सोचने लगी, यह सौरो कौन है ? …बहुत सोचा, मगर उसकी सूरत और याद कुछ नहीं आई फिर मैंने मन को तसल्ली दी—होगी कोई 'क्लासमेट' ।

करीबन तीन माह के बाद, दूसरी पेंटिंग मिली । एक हरा-भरा पेड़, उसके निकट से ही एक स्वच्छ नदी गुजर रही रही थी । मैंने ध्यान से देखा, उससे पहले पेड़ और इसे दूसरे पेड़ में कोई अन्तर नहीं था—केवल यही कि पहला पेड़ अकेला था…सूखा था, परन्तु दूसरा पेड़ हरा-भरा था और उसके साथ हँसती हुई एक नदी थी ।…दोनों चित्र काफी अच्छे थे । मैंने फ्रेम करवा कर दोनों को टाँग दिया ।

समय के पंख उठते रहे—गिरते रहे और इस प्रकार छः महीने और निकल गये । मैं पेंटिंग वाली बात भी मन से

उतार चुकी थी। तभी एक तस्वीर और मिली––एक सूखा पेड़, ठीक पहले की तरह······अकेला नहीं, बगल में एक नदी भी थी जिसमें बहुत कम पानी था। ······इस पेंटिंग को देखकर मैं काँप गई––मेरा नर्स जीवन·········

●

मेरी ड्यूटी फिर टी० बी० वार्ड में थी। 'आफटरनून ड्यूटी' थी––मैं रोगियों में अपनत्व उड़ेल रही थी। तभी बेड नं० १८ का मरीज़ बुरी तरह खांसने लगा। मैं निकट गई, मुझे मेरा नर्स जीवन गिरता सा लगा। ये तो एडवर्ड था······

––ये तुम्हें क्या हो गया ?

––कुछ नहीं, तस्वीरें मिल गईं ?

––हाँ।······

––फिर भी पूछती हो······बस समझ लो, नदी में पानी कम गया······पेड़ फिर सूख गया और अब सूखा ही रहेगा।

वह बुरी तरह खांसने लगा। मैं उसकी पीठ सहलाने लगी।

––नर्सों की हमदर्दी के लिये बीमार होना चाहिये। अब मैं फिर बीमार हूँ······

मुझे यह अच्छा नहीं लगा।······

मैं अपने रूम आई। मुझे अजीब घुटन महसूस होने लगी। जाने क्यों, मुझे ऐसा लगा कि मैंने बहुत बड़ी गलती की है, जिसकी सज़ा एडवर्ड पा रहा है। एडवर्ड को मौत ले जायेगी। मैं चीख उठी––नहीं ऐसा नहीं, हो सकता। एडवर्ड मेरा है······मैं उसकी हूँ। ······मुझे लगा आज नर्स मेरीना मर चुकी है जो बराबर फर्ज़ के पीछे भागा करती थी।

मैं रोज़ उसके पास जाती। घंटों बातें करती। उसके लिए फल ले जाती। फूल उसे देती। वह ले लेता, मगर मेरे जूड़े में लगाने की इच्छा प्रकट नहीं करता। मैं अपने में घुटी जाती।......

उसकी हालत खराब होती गई और उस दिन उसने मुझे बुलवा भेजा। मैं गई। डाक्टर घबड़ाये से खड़े थे। उसके मुंह से काफी खून गिरा था और खांसी जारी थी। मैं उसके पास आ गई।

——मेरीना तुम आ गई।

उसने मुझे तरसती आँखों से देखा।

——हां एडवर्ड.........

——अच्छा किया, समय नहीं है......नर्सों की हमदर्दी रोगियों के लिए है। मेरीना, मैं रोगी रहा तुम्हारी हमदर्दी मिलती रही। अच्छा हुआ, हमदर्दी ने मुँह फेर ली। आज फिर बीमार हूँ, हमदर्दी पर रहा हूँ। ......

मैं भींगने लगी।......

——और अब हमदर्दी की गोद में मर रहा हूँ। आशा है मरने के बाद भी तुम्हारी हमदर्दी मेरे साथ रहेगी क्योंकि मैं निरोग होकर नहीं......बीमार ही मर रहा हूँ। मरने का एकदम ग़म नहीं क्योंकि मैंने यही चाहा......

मैंने उसके मुख पर हाथ रख दिया। अब मैं उसे कैसे समझाती कि मैं नर्स नहीं, केवल मेरीना हूँ......उसकी अपनी मेरीना——जिसके पास भी हृदय है।

——मेरीना, कल दरबान कह रहा था कि यह बेड बहुत मनहूस है। इसने अभी तक आठ आदमियों को......इसे बदल

देना चाहिये । ······मगर मैं खुश हुआ, मुझे यकीन हो गया कि इस बेड पर मैं कभी रोगमुक्त नहीं हो सकूंगा—और मैं यही चाहता भी हूँ । दूसरे बेड पर जाने से हो सकता है अच्छा हो जाऊं······तब हमदर्दी ?···नौवां मैं हूँ । मेरे बाद—भगवान न करे कोई आये । ···यह वार्ड, यह बेड, यह लोग सभी तुम्हें याद रहेंगे । कहीं तुम भूल न जाओ मुझको यही डर है, क्योंकि तब-तक कोई और मरीज आ चुका होगा ।

डाक्टर ने 'पल्स' देखा । ···मेरा जी करता, मैं जोरों से चीखने लगूँ···मगर मैं चुप रही । एक गहरी खामोशी डूब गई ।······उसने खामोशी तोड़ी—मेरीना ! एकदम कहीं प्यार किये जाने से अच्छा है किसी के द्वारा कम से कम एक बार प्यार किया जाये और भुला दिया जाए । ·····

वह बुरी तरह खांसने लगा । बलगम के साथ बहुत सा खून बाहर आ गया और वह······

मैविस, अपने नर्स-जीवन के साथ-साथ मैं भी शिकस्त खा गई ।···मैंने उसे तब चाहा, जब वह मौत की अन्तिम सीढ़ी पर कदम रख चुका था—जहाँ से लौट पड़ना बहुत कठिन है । मगर मैं सच कहती हूँ, अगर उसे यह विश्वास हो जाता कि मैं उसे प्यार करने लगी हूँ तो वह उस अन्तिम सीढ़ी से भी लौट आता ।······

उस दिन ही, तीसरी पेंटिंग—जिसमें एक सूखा पेड़ और एक नदी जिसमें बहुत कम पानी था, मैंने रंग फेर कर उस नदी को एक दम सुखा दिया और उस चित्र का शीर्षक रखा-"सूखा पेड़ : सूखी नदी ।'

छोटी चिड़िया और चिड़ी का एक्का

हम लोगों ने मिशन की ज़मीन खरीदी है, वहां घर बनाया है। मगर भाभी वहाँ नहीं रहतीं। लेडी हैल्थ विज़िटर हैं, 'सैन्टर' के क्वाटर में रहा करती हैं। साथ में उनकी एक मात्र पुत्री, मेरी भतीजी रहा करती है। यहीं कोई चौदह की है, मेरे लिये बच्ची है—इसीलिए मैं उसे बेबी कहा करता हूँ। भैया नहीं हैं। यही बीता जनवरी जो आया था, उन्हें अपने साथ लेकर चला गया। तब से मैं भाभी के पास रहने लगा था। परन्तु, जब से भाभी नागपुर से अपनी बहन-बेटी हन्ना को लेकर आई हैं, मैं अपने घर चला आया हूँ। हन्ना मैट्रिक में पढ़ती है। मेरी उससे कोई खास बात नहीं होती, केवल यही—चाय अच्छी है, दूध कम है, थोड़ी और चीनी दो, गर्म कर दो या फिर प्याली खाली हो गई, लेती जाओ—बस !

तो उस दिन मैं 'सैन्टर' में ही था। हम लोग ताश खेलने बैठे। भाभी और हन्ना, मैं और वहीं की एक नर्स—पार्टनर। बेबी हन्ना के पास बैठी थी।

—जिस पर गुलाम निकलेगा वही पीसेगा।

—हाँ, ठीक है।

और मैं पत्ते बाँटने लगा। भाभी को ईंट की तिग्गी, नर्स को लाल पान की दुग्गी, हन्ना को चिड़ी का एक्का और मुझे काला पान की बीबी।...मैं फिर बांटने जा रहा था कि बेबी ने टोका—'अंकल, एक पत्ता मुझे भी दो न।' मैंने मज़ाक में उसे भी एक पत्ती बढ़ा दी। काला पान का बादशाह।

मैं बांट रहा था, अभी तक गुलाम किसी पर नहीं आया था, तभी हन्ना ने अपना चिड़ी का एक्का बेबी के आगे रख, उसका पान का बादशाह खुद उठा लिया।

—अंकल, हन्ना दीदी ने मेरा बादशाह ले लिया।

मैंने देखा, मेरे पास काला पान की बीबी थी, हन्ना के पास अब काला पान का बादशाह। वह मुस्कुरा रही थी गोकि...। गुलाम हन्ना को मिला वह बांटने लगी। बेबी मेरे पास आ गई।

—अंकल, एक्का क्या होता है ?

—एक्का, एक होता है...हमेशा अकेला रहता है।

वह चुप हो गई। हम ताश खेलते रहे। कुछ देर बाद वह मेरे पास से उठ कर भाभी के निकट चली गई।

—ममी, रेडियो लगा लें।

—नहीं, शोर होने से खेल खराब हो जाता है।

वह चुप हो गई। पाँच मिनट गुजरा।

—ममी, बच्चों का प्रोग्राम होगा।

—मत लगाओ, मेरे सिर में दर्द है।

वह चुप हो गई।...

—एक ग्लास पानी लाओ।

वह पानी लाने चली गई। जब पानी लेकर लौटी तो उसने एक बार घड़ी की तरफ देखा, फिर मुझे। उसका यह उतरा चेहरा मुझे भला नहीं लगा।

—बेबी रेडियो लगाओ न, गाना सुनने का मन है।

वह अपनी ममी को निहारने लगी।...

—ममी को क्या तक रही हो, मैं कहता हूँ लगाओ न।

वह खुश हो गई। उसने स्वीच आन किया। भाभी ने कहा—छोकरी जान देती है रेडियो पर, देखूंगी न ससुराल में रेडियो...

—देख लेना ममी, जब कण देंगे तो सबसे पहले रेडियो ही खरीदेंगे।

रेडियो बजने लगा...'आंचल से क्यों बांध लिया मुझ परदेशी का प्यार...।' भाभी ने काला पान का दस्सा फेंका, नर्स ने गुलाम और हन्ना ने बीबी...। हमारे छः हाथ हो चुके थे। मेरे पास केवल एक काली पत्ती थी। मैंने बीबी के बगल में रख, धीरे से चारों पत्तियां उठा लीं। हन्ना हार कर भी खुश थी क्योंकि उसकी बीबी को मेरा पान का बादशाह जीत गया था।...

—अब बस करो।...भाभी ने कहा। हम लोगों ने खेल बन्द कर दिया। भाभी डाइनिंग-रूम में चली गईं। बेबी और हन्ना रेडियो सुन रहे थे। मैं बेबी के बगल में बैठ गया। मेरे हाथ में ताश की पाकेट थी। तभी कुछ देखकर बेबी बोली—'अंकल, पान का बादशाह हन्ना दीदी के पास है।

—लाओ हन्ना, नहीं तो सेट खराब हो जायगा।

—मैं बादशाह नहीं दूंगी ।......हन्ना मुस्कुरा रही थी। उसकी मुस्कुराहट मुझे भली लगी।

—अंकल, एक पत्ती कम होने से क्या होगा ?

—होगा क्या, खेल बन्द थोड़े होगा। जिसके पास एक पत्ती कम होगी, समझ जायेंगे उसी के पास है।

वहां से उठकर मैं भाभी के पास चला गया। जाने क्यों आज उनके पास जी नहीं लग रहा था। थोड़ी देर गप मार कर मैं पुनः ड्राइंग-रूम में आ गया। बच्चों का कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया था... एक तोता था और एक मैना। दोनों में गहरी दोस्ती थी। एक दिन एक शिकारी आया। उसने मैना पर तीर साधा, मैना गिर कर छटपटाने लगी। तोता चाहता तो इस बीच उड़ जाता, मगर वह उड़ा नहीं। शिकारी ने तोते पर निशाना लगाया, वह भी मर गया...'

—तुम लोग कहानी सुनो, मैं चलता हूँ।

हन्ना मुझे देख रही थी। बेबी का मन रेडियो से लगा था। अभी तक पान का बादशाह हन्ना की मुट्ठी में था। मैंने पाकेट मेज पर रख दी।

—हन्ना ! जब बादशाह से मन भर जाये तो उसे पाकेट में वापस रख देना।......

मैं घर चला आया।

●

उस दिन रविवार था। 'सेन्टर' से लोग मेरे घर आये हुये थे। दिन का खाना मेरे ही यहाँ था। मैं अपने स्टडी-रूम में था।...बेबी मेरे पास आई। इस समय मैं बहुत व्यस्त था, इसलिए उसका आना मुझे खटका।

अभी जाओ बेबी, कुछ काम है।

—नहीं अंकल, पहले कहानी सुना दो।

—मुझे कहानी नहीं आती।

—हाँ आती होगी, हन्ना दीदी ने तो आधी ही कहानी सुनाई और कहने लगी कि आगे तुम्हारे अंकल जानते हैं।

—हाँ...हाँ-आती है, तुम्हारी दीदी कौन सी कहानी सुना रही थी ?

—जाओ, हम नहीं बताते।

—मेरी अच्छी भतीजी...मेरी बेबी...

—हन्ना दीदी कहती थी कि एक छोटी चिड़िया के साथ एक तोता रहा करता था। एक दिन तोता कहीं शहर गया हुआ था तब एक बड़ी चिड़िया आई। उसने छोटी चिड़िया के साथ रहने की आज्ञा मांगी। छोटी चिड़िया ने खुशी-खुशी बड़ी चिड़िया को अपने पास रख लिया। जब शाम को तोता आया तो उसने बड़ी चिड़िया को देखा। जाने क्या सोचकर, दूसरी सुबह वह किसी दूसरी जगह रहने के लिए चला गया।......बड़ी चिड़िया बहुत रोई। उसने छोटी चिड़िया से कहा कि तोता के नहीं रहने से उसे बहुत-बहुत डर लगता है......

—तब क्या हुआ ?

—बस यहीं तक। दीदी कहती है आगे तुम जानते हो।

—ओ......

तभी माँ की पुकार हुई। हम भोजन के लिये चले गये। कहानी वहीं थम गई। टेबल पर इधर-उधर की बातें चलतीं रहीं। मैं भोजन कर के सबसे पहले उठा। गुसलखाने में हाथ

धोकर, बाल्टी और सोपडिश बाहर बरामदे में लेता आया। हन्ना जब हाथ धोने आई। सोपडिश बढ़ाते हुए मैंने कहा—बड़ी चिड़ियों को डर भी लगता है ?

—हाँ, तोता नहीं है इसीलिये।

तभी बेबी आ गई। बात जहाँ की तहाँ पड़ी की पड़ी रह गई।...

●

कुछ दिनों बाद मैं 'सेन्टर' गया। भाभी चाय पी रहीं थीं। बेबी बैठी थी। हन्ना उसके लिये दूध गर्म कर ला रही थी। मुझे देखते ही, हन्ना के हाथ हिल गये और काफी दूध छलक कर गिर गया। भाभी को यह बुरा लगा। हड़बड़-हड़बड़ करती है, कोई सलीका नहीं...,

मैं ड्राइंग रूम में आ गया। बेबी भी साथ थी, ज़िद करने लगी—'कहानी सुनाओ।'

—बेबी, तुम्हारी दीदी झूठ कहा करती है कि बड़ी चिड़िया इसलिये डरती है कि तोता उसके पास नहीं रहता। एक दिन जब बड़ी चिड़िया, छोटी चिड़िया के लिये दाना ले कर आ रही थी उसी समय तोता आ गया। तोता को देखते ही बड़ी चिड़िया डर गई और दाना गिर गया...।

—अंकल, आगे ?

—आगे तो तुम्हारी दीदी जानती है।

बेबी उठ कर किचिन की तरफ भागी। मैं जानता था, वह हन्ना के पास गयी है। जब वह लौटी तो कहने लगी,

अंकल तुम झूठ बोलते हो, हन्ना दीदी कहती है कि बड़ी चिड़िया कभी झूठ नहीं बोलती। वह तोता के आने से

थोड़े ही डरी······तोता जब आया न, तो उसे देख कर बड़ी चिड़िया बहुत खुश हुई और खुशी के मारे दाना मुँह से गिर गया।

——ओ ! अब समझा······हाँ बेबी, तब एक दिन तोता छोटी चिड़िया से कहने लगा कि वह बड़ी चिड़िया से कह दे कि शाम को वह बगीचे में अकेली आ जाये···साथ में छोटी चिड़िया को भी नहीं लाये।

——छोटी चिड़िया को क्यों नहीं अंकल ?

इसलिये कि छोटी चिड़िया बहुत बच्ची है।

······इस प्रकार हम जहाँ-तहाँ बराबर मिला करते। हन्ना कहती——बड़ी चिड़िया कहती है कि तोता उसे एकदम काम नहीं करने देता——हमेशा अपने पास बुला लिया करता है। मैं उसका हाथ अपने हाथों में लेकर कहता—बड़ी चिड़िया बहुत अच्छी है। और वह कहती——तोता भी बहुत अच्छा है, बहुत मीठा बोलता है।



मैंने अंग्रेजी में बी० ए० आनर्स किया था—सेकेन्ड क्लास एर्थ। एम० ए० करने मुझे पटना जाना था। उस दिन विदाई लेने मैं 'सेन्टर' गया।

हन्ना उदास थी।

——चिट्ठी तो लिखोगे न ···?

——कहीं भाभी के हाथ पड़ गई तो···.

वह और उदास हो कई।

——भूल तो नहीं जाओगे ?

——पगली !···कहीं से शादी की बात आई थी।

माँ ने पूछा था, मैंने इन्कार कर दिया।

तभी भाभी आ गई साथ में बेबी भी थी।

——जा रहे हो ?

——हाँ···।

——खूब मन लगा कर पढ़ना।···

बेबी आगे बढ़ आई।

——अंकल, चिट्ठी तो मुझे लिखोगे न ?

मेरी समस्या जैसे एकाएक हल हो गई मैंने उसे प्यार से अंक में भर लिया——मेरी अच्छी भतीजी···मेरी गुड्डू बीबी...

●

समय बहता रहा। चिट्ठी आती रही, जाती रही। तोता और चिड़िया की कहानी बढ़ती रही। छः महीने गुजर गये।···

उस दिन बेबी का खत मिला। लिखा था——बड़ी चिड़िया छोटी चिड़िया से कह रही थी कि तोता बड़ा झूठा निकला। एक तो छोड़ कर चला गया, दूसरे कभी देखने तक नहीं आता।······

मैंने बेबी को उत्तर दिया——मेरी छुट्टियों में दो महीनों की देरी है···बस। एक समय आता है जब सारे के सारे तोते उड़ कर पहाड़ चले जाते है। मगर बड़ी चिड़िया के तोते ने सोचा कि वह इस बार पहाड़ नहीं जायेगा, वह बड़ी चिड़िया के पास जाकर रहेगा, वह झूठा नहीं है···।

छुट्टियाँ हुईं, मैं घर गया फिर पुराना दर्द लेकर वापस आया। इसी दर्द और दवा में ४ महीने निकल गये।···

काफी चुप्पी के बाद बेबी का पत्र मिला। मैंने पत्र

खोला—'''बड़ी चिड़िया को छोड़ कर जब तोता चला गया तो बड़ी चिड़िया के यहाँ एक शिकारी आया वह बड़ी चिड़िया को पकड़ कर अपने साथ ले जाना चाहता था। बड़ी चिड़िया बहुत रोई'''बहुत डरी अब वह कभी भी अकेली नहीं रहती जब शिकारी सामने आता, वह छोटी चिड़िया के पीछे छिप जाती ·· जब अपने को बचाते-बचाते थक गई तो छोटी चिड़िया से कहने लगी कि उसका तोता बड़ा झूठा है, अब भी अगर वह नहीं आया तो वह खुद शिकारी के सामने चली जायेगी···, मेरा मन किसी अज्ञात शंका से भर आया दूसरे दिन ही मैं घर के लिये रवाना हो गया।

घर आकर पता चला कि नागपुर से कुछ लोग हुन्ना को देखने आये हैं मुझे यह खबर, साँप के काटने से किसी के मर जाने की खबर जैसी ही बुरी लगी मैंने खामोशी का ही साथ दिया।

शाम, सेन्टर गया। भाभी, अपने मेहमानों के साथ 'ड्राइंग-रूम' में व्यस्त थी। मुझे देखते ही कहने लगी—अरे तुम ?

——जी—

फिर अतिथियों को मेरा परिचय कराया गया। मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था ...

सेहत गिरी नज़र आती है ?

—ठीक हूँ भाभी...जरा सुनियेगा। और मैं उठकर बाहर चला आया। भाभी भी आ गईं।

—क्या बात है ?

भाभी...

—पूछो न।

—बुरा तो नहीं मान जाओगी ?

—धत् ! देवर की भी बातों का बुरा माना जाता है।

—भाभी मैं शादी करना चाहता हूँ...

—ठीक तो है, कर लो। मैं हन्ना की भी बात लगा रही हूँ। दोनों की लगन एक साथ हो जायेगी।

—मैं तो हन्ना के साथ...

—ओ ! अब सूझी है हन्ना। जब माँ ने पूछा था तो इनकार कर दिया...। इन लोगों के पीछे भी झूठ-मूठ का खर्च करा दिया।

—माँ ने पूछा तो था मुझे क्या मालूम कि हन्ना से ही...

—खैर, जो हुआ सो ठीक हुआ। ठीक समय पर तुमने कह दिया। अगर इन लोगों को ज़बान दे देती तो...

भाभी खुश थीं। मैं भी खुश था। मैं डाइनिंग-रूम की तरफ बढ़ गया, भाभी ड्राइंग-रूम। हन्ना और बेबी चाय पी रहे थे। मुझे देखते ही हन्ना गमगीन हो गयी। वह मेरे लिये चाय बनाने लगी। दो बड़े-बड़े आँसू कप में गिर गये। वह चाय फेंकने के लिए उठी।

—और कुछ थोड़े गिरा है, आँसू ही गिरे हैं...लाओ मैं पी लेता हूँ।...मैंने चाय की प्याली ले ली। बेबी चुप बैठी थी...बहुत खामोश।

—बेबी, बड़ी चिड़िया कहती थी न कि उसका तोता बड़ा झूठा निकला...वह एकदम झूठ बकती थी। उसका तोता आया और एक दिन छोटी चिड़िया से कहने लगा कि वह बड़ी चिड़िया को अब हमेशा-हमेशा के लिये अपने साथ

ले जायेगा।

मैंने देखा, मुस्कानों की हल्की लकीरें हन्ना के अधरों पर बिछ गई थीं। मगर बेबी चुपचाप चाय पी रही थी।...

...दो महीने बाद हमारी शादी थी। मैं कालेज लौट आया।...

●

शादी के कुछ दिन पहले से ही बेबी बहुत व्यस्त थी। सारा काम-काज वही निपटाने पर थी...क्या नहीं आया... क्या नहीं हुआ...किसको 'कार्ड' नहीं मिला...

शादी हो गई मैं हन्ना को ब्याह कर ले आया। रात में मैंने कहा—'तोता झूठा नहीं निकला, आखिर वह आ ही गया...।' हन्ना बोली—'तोता थोड़े आया। मैंना ने इतनी तपस्या की...इतनी तपस्या...कि तपस्या के प्रताप से खिंच कर तोता चला आया।' हम हँस दिये।...

दूसरे दिन हम सब सेन्टर गये। दिन का खाना वहीं था। खाना खाकर हम ड्राइंग-रूम आये। ताश खेलने का प्रोग्राम बना। हन्ना ताश निकालने उठी। बेबी किचन में मेरे लिये कॉफी बना रही थी। मुझे काफ़ी पसन्द है। ताश नहीं मिल रहा था...

—तुम ताश खोजो, मैं काफी लेकर आता हूँ -

मैं उठकर किचिन गया।...

—लाओ बेबी कॉफी दो।

उसने कॉफी बढ़ा दी।

—बड़ी चुप हो।...

वह बात टाल गई।

—अंकल, कहानी पूरी नहीं हुई...

—कहानी ?...अब कहानी में रहा ही क्या...तोता अपने साथ बड़ी चिड़िया को ले गया। दोनों खुशी-खुशी रहने लगे।

—और छोटी चिड़िया अंकल ?

—'छोटी चिड़िया'...मैं सोचने लगा कि क्या कहा जाये...

तभी आवाज आयी—बेबी ! चूल्हे पर दूध चढ़ा कर औटा लेना। मैं सोच रहा था क्या कहा जाये...

—तुम नहीं कह सकोगे अंकल, मैं कहती हूँ। छोटी चिड़िया हमेशा थोड़े ही छोटी रही..वह भी बड़ी होने लगी...

मैंने देखा, इस एक वर्ष के दौरान में बेबी एकदम बदल गयी थी...एकदम...।

—छोटी चिड़िया बड़ी होने लगी...बड़ी, बहुत बड़ी... सब कुछ समझने लगी।...और जिसे तोता को बड़ी चिड़िया चाहती थी, उसी को वह भी...मगर तोता उसे हमेशा छोटी ही समझता रहा।...

—बेबी ! मैं चीखा।

—बेबी नहीं ..छोटी चिड़िया। तोता केवल बड़ी चिड़िया को प्यार करता है, इसलिये छोटी चिड़िया ने सोच लिया है कि वह अब कभी भी तोता से नहीं बोलेगी... हमेशा अकेली रहेगी। और अपनी कोठरी में जाकर उसने भीतर से द्वार लगा लिये। मुझे पसीना आने लगा...चचा— भतीजी...

/

ड्राइंग-रूम में आकर, बैठते हुए मैंने कहा—'हन्ना, ताश बाँटो।'...

—खाक खेल होगा। भाभी ने कहा—चिड़ी का एक्का तो है ही नहीं।...मुझे कुछ अजाब सा लगने लगा। मेरे सामने पहला दिन घूम गया...

—अंकल, हन्ना दीदी ने मेरा बादशाह ले लिया।

—अंकल, एक्का क्या होता है ?

—एक्का, एक होता है...हमेशा अकेला रहता था।

—अंकल, एक पत्ती कम होने से क्या होगा ?

'...हाँ भाभी, खेल नहीं हो सकता। चिड़ी का एक्का है ही नहीं, खेल क्या होगा ! हन्ना, ताश समेट कर रख दो।'

हन्ना ने मेरी ओर देखते हुए कहा—वाह ! खेल क्यों नहीं होगा। जिसके पास एक पत्ती कम होगी, हम समझ जायेंगे उसी के पास है।

खेल होने लगा—कोर्टपीस। आज मैं बराबर हार रहा था, बराबर मुझे ही पीसना पड़ता। इसीलिये एक पत्ती मुझे ही कम मिलती। चिड़िया के खेल के समय मैं कहता—'मैंने चिड़ी का एक्का दिया...' और यह कहकर मैं तीनों पत्ती समेट कर उठा लेता, यह जानकर भी कि चिड़ी का एक्का मेरे पास होकर भी नहीं था...

तभी दूध जलने की गंध आने लगी। भाभी बिगड़ी—जाने क्या हो गया है छोकरी को। जैसे-जैसे बड़ी होती जा रही है किसी काम में दीदा नहीं लगता...। हन्ना, दूध देख लो...

—नहीं हन्ना, मैं दूध उतार आता हूँ। तुम मेरे लिए ज़रा बाँट दो, मैं बाँटते-बाँटते ऊब गया हूँ।...

मैं किचिन जाने के लिये उठा। परन्तु किचिन न जाकर बेबी के रूम में चला गया। उसकी कोठरी खुली हुई थी। देखा, बेबी सो रही थी। चेहरे पर कुछ भाव अवश्य थे... पढ़ने की मुझमें हिम्मत न हुई। मैं लौटने को हुआ, तभी उसकी बगल में, बेड पर चिड़ी का एक्का पड़ा हुआ नजर आया। मगर उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे—शायद बेबी ने ही फाड़ दिया था।...

किचिन में आकर मैंने साफी से पकड़ दूध की डेकची उतार कर रख दी। सारा का सारा दूध उबल कर आग में गिर गया था...परन्तु अभी तक उसके जलने की गंध उठ रही थी।...

सिस्टर



—टन···टन···टन···ओह ! सुबह की प्रार्थना की घन्टी पड़ गई और मैं तैयार भी नहीं ।

सिस्टर क्लारा बेड से बढ़ कर बाथरूम की ओर बढ़ गयी ।

——टन···टन···टन···घंटी लगातार बजती जा रही थी । देर हो गई तो मदर मेरी सेंट टामस कितनी नाराज होंगी ।···

क्लारा ने जल्दी से मुंह पर पानी के दो-चार छींटे दिये और तौलिया थामे ड्रेसिंग रूम में आ गई ।···लेकिन अभी-अभी जो स्वप्न देखा था वह कितना मीठा था···कितना प्यारा···। उसके मुख पर रीट-वेल पड़ा था···वह चर्च में थी···साम गया जा रहा था—'ओ हैप्पी होम' वेयर टू इन हार्ट यूनाइटेड···

——टन···टन···टन···क्लारा और भी तेजी से ड्रेस करने लगी । वह शीशा के सामने खड़ी थी लेकिन ये तो श्वेत स्कर्ट नहीं——गउन था···वेल नहीं । स्वप्न में भी तो वह ऊपर से नीचे तक श्वेत वस्त्र में थी, फिर यह अन्तर कैसा ? जी में आया, इस श्वेत गाउन के चिथड़े कर दे ।

——टन···टन···टन···घन्टी है कि बजती ही जा रही है। परन्तु इससे 'कम टू दी लार्ड' अथवा···'कम टू दी क्रास' का समवेत स्वर नहीं बह रहा था, केवल टन···टन···टन !

क्लारा तेजी से बाहर निकल गई। बाहर अजीब घुटा-घुटा सा कुहारा तैर रहा था। गिरजा का क्रास इसी कुहारे में छिप गया था—पूरा का पूरा। खुद चर्च भी एक टीला भर लग रहा था—दूरी से। घन्टी का स्वर शून्य में डूब गया था। इसका अर्थ, क्लारा समझती थी। इसका अर्थ वह लेट हो गई। इसका अर्थ था कि आज मदर मेरी सेंट टामस के समक्ष उसे उपस्थित होना पड़ेगा। उसके हलके-फुलके कदमों में गति बंध गई।

क्लारा सब से कम उम्र की सिस्टर थी——कमसिन, महज उन्नीस की।···अन्य सभी सिस्टरों से अधिक सुन्दर, अधिक आकर्षक।···बे-मां-बाप की अनाथ लड़की। वह मिशन में पली थी। सम्भवतः यही कुछ कारण थे कि मदर मेरी सेंट टामस को उसकी बड़ी चिन्ता रहती। वह उसकी हर छोटी-बड़ी बात की खोज-खबर रखती। इधर कुछ दिनों से, क्लारा में 'चेन्ज' देख रही थी। उन्होंने मार्क कर लिया था कि वह कुछ खोयी-खोयी रहती है···बाइबिल पीरियड में पहले जैसी लगन नहीं···

······और आज प्रेयर में लेट थी। मदर ने बुलाकर कहा——'क्लारा ! ये आर दी सौल्ट ऑफ अर्थ, बट इफ दी सौल्ट हैव लौस्ट हिज सेवर, वेयर विथ शैल इट बी सौल्टेड ? इट इज देयरफोर गुड फोर नथिंग, बट टू बी कास्ट आऊट एन्ड टू बी ट्राडन अन्डर फूट ऑफ मैन।'

क्लारा को उस वातावरण से चिढ़ ही आई थी, जिसने उसे चारों ओर से जकड़ रखा था नित्य के कार्य-क्रम से जिस में भूल कर भी कोई 'चेन्ज' नहीं, वह ऊब गयी थी। कान्वेन्ट का घेरा उसे 'प्रिजिन' प्रतीत होता···जहाँ वह कैद थी, उसकी जैसी अन्य सिस्टरें कैद थीं···मदर मेरी सेंट टामस और फादर पाल तक···!

गले में पड़ी चेन जिससे क्रास झूलता, उसे लगता जैसे कोई जँजीर है जिसमें वह बंधी है। अब वह वक्त-बे-वक्त क्रास का निशान नहीं बनाती, आफ आवर में बाइबिल नहीं पढ़ती··· । जब पायस फादर पाल गिरजे में सरमन देते—'एन्ड दी लार्ड गाड सेड इट इज नौट गुड दैट दी मैन शुड बी एलोन······एन्ड ही टुक वन और हिज़ रिबस···एन्ड दी रिब व्हिच दी लार्ड गाड हैड टेकिन फ्रौम मैन, मेड ही ए वुमैन।'

वह बड़े ध्यान से सुनती। कुछ अर्थ लगाने की कोशिश करती, और जब फादर कहते—'एन्ड ऐडम सेड, दिस इज नाट बोन और माई बोन्स, एन्ड फ्लेश औफ माई फ्लेश······' वह अनुभव करने लगती—कुछ अजीब बात सोचती—'आफ तो लिखा है, फिर उसे बाँध क्यों रखा गया है।' वह मुक्त होकर उड़ जाना चाहती थी······मगर विवश थी।

उसका जी होता, वह झपट कर फादर के गाउन को फाड़ दे, उस पट्टी को टुकड़े-टुकड़े कर दे······जिसे दुआ करते हुए फादर पलटते थे और दोनों ही ओर क्रास का चिन्ह स्पष्ट अंकित था। जब मदर मेरी सेंट टामस बाइबिल क्लास लेती। वह उनके हाथों से बाइबिल छीन लेना चाहती। उसका जी होता, वह सारे कैथौलिक संसार से विद्रोह कर

बैठे, रूढ़ियों की सभी रस्सियों को जला कर भस्म कर दे।······लेकिन वह मिशन में पली थी। अतः मिशन के प्रति उसके कुछ कर्तव्य थे······कुछ जिम्मेदारियाँ थीं। वह उसी कान्वेंट में थी···जहाँ उसे मुफ्त शिक्षा दी गई थी। बेसहारे को सहारा दिया गया था।···वह विद्रोह करे तो कैसे... विद्रोह करे तो किससे···?

क्लारा की विचार श्रृंखला चमक गई। उसने देखा, कीटी अपनी जँजीर को झटके पर झटके दे रही है। उसने बढ़ कर, उसके गले से चेन अलग कर दिया। सम्भवतः आज वह पहला अवसर था जब सिस्टर ने कीटी को बे-वक्त खोल दिया था। उसे लगा, यह जँजीर बेकार है, कीटी को स्वतंत्र रहना चाहिये।···और उसके हाथ, गले में लटके चेन पर रुक गये··जिसमें क्रास झूल रहा था···वह भी तो कीटी की तरह चेन में जकड़ी है।

और मोनिका!—मोनिका कितना चाहती है कीटी को···कितना दुलारती है कीटी को। और कीटी!—कीटी कितनी हिल गई है उससे।

मोनिका स्टैन्डर्ड थर्ड में पढ़ती है। उसकी आँखें कितनी प्यारी हैं, कितनी मासूम···उसके बाल कितने घने हैं···कितने मुलायम, और क्लारा ने अपने सिर को स्पर्श किया···बाल थे कहाँ? सब के सब तो काट दिये गये थे।···उसे अपने से अजीब सी नफरत हुई—उसने कपड़ा सिर पर सरका लिया।···

मोनिका का भाई उसे नित्य अपनी साईकिल पर छोड़ जाता, ले जाता। क्या नाम बताया था मोनिका ने···डि···

डि···डिक डायसन ! कितना सुन्दर कितना स्वस्थ।··· उन्मुक्त हास्य, भरी आँखों में शरारत···बाहों में जुम्बिश !··· जब कभी उसे आने में देर हो जाती, मोनिका क्लारा के ही पास रहती और जब कभी वह समय के पूर्व पहुँच जाता, मोनिका को क्लारा के ही पास छोड़ जाता।···कितनी बार क्लारा ने 'शटर' उठाकर उसे देखा था, मन में विवेचना भी जगी थी। लेकिन कभी जी से खुल नहीं पाई, कुछ कह नहीं पाई—क्योंकि वह सिस्टर थी, यह सब कुछ उसके पहुँच के बाहर थी।···

उसने आलटर में रखी अधजली मोमबत्ती जला दी। जी में खोखलापन समा गया, उसने बाइबिल खोला—'ब्लेस्ड आर्ट दाऊ एमंग वुमेंन, एन्ड ब्लेसेंड इज़ दी फ्रूट ऑफ दाइ वुम्ब······ऐज सून ऐज़ दी वायस ऑफ दाइ सैलुटेशन साउन्डेन्ड इन माई इअर्स, दी बेब-लीप्ड इन माई वुम्ब आर जाय।'

तभी हल्की सी कच्च की आवाज हुई, हवा के झोंके से कुछ गिर गया था। क्लारा ने बाइबिल बन्द कर दिया। शीट के खिसक जाने से सैलूलाइड की मरियम गिर गई थी। उसने उठाकर ध्यान से देखा······मरियम की गोद में एक नन्हा सा शिशु था······वह देखती रही···और देखती रही...उसे एक विचित्र सी धड़कन महसूस हुई। उसे लगा, वह डिक के बिना नहीं रह सकती···वह डिक के साथ एक घर बसायेगी, उसका होगा, उसका और उसके डिक का—स्वीट होम।

टन···टन···टन···यह रात्री प्रार्थना की घंटी थी। क्लारा हड़बड़ा कर उठ गई।

अंतिम प्रेयर के पूर्व फादर पाल ने कहा—'……तू इस लोक की चिन्ता में मत पड़, बल्कि उस लोक की तैयारी कर, जहाँ मेरे पिता ने तेरे लिये घर बनाया है—स्वीट होम !



क्लारा ने निश्चय कर लिया, अब वह और अधिक नहीं सहेगी। आज वह डिक से सभी कुछ कह देगी।……परन्तु डिक नहीं आया…मोनिका नहीं आई। उसे विचित्र घुटन महसूस होने लगी। मन की बात मन में वह पाने लगी। आज तक उसकी उम्र हारती रही थी, मन जीतता रहा था…। आज वह जान बूझकर उम्र को विजय बना देना चाहती थी…मन को प्रास्त कर।…

दूसरे दिन भी डिक नहीं आया। केवल मोनिका आई, साथ में पीउन आया था। मोनिका ने कुछ लिफाफे लाकर उसे थमा दिये और कहा—भैया बहुत बिज़ी है, सभी सिस्टरों में इन लिफाफों को बाँट देने के लिए कहा है…' बड़े प्यार से निहार कर वह लिफाफे बाँटने चली गई। वह खुश थी, क्योंकि यह डिक का काम था। लिफाफे बँट गये, जो बच रहा—वह उसके नाम था। उसने खोलकर देखा—इन्वीटेशन कार्ड !…डिक की शादी, और कल ही !……वह कुछ बोली नहीं, चुप रही। उसने एक बार गले में भूलते चेन को देखा, फिर क्रास का निशान बनाकर सोचने लगी —' तू इस लोक की चिन्ता न कर, बल्कि उस लोक की, जहाँ तेरे पिता ने तेरे लिये घर बनाया है—स्वीट होम !'



चर्च खूब सजा था। लाग भरे-पुरे थे। दुलहा-दुलहिन आये। सभी 'सीट' छोड़ कर खड़े हो गये। दुलहन के मुख पर 'रीट-वेल' पड़ा था······

आर्गन का स्वर उठने-गिरने लगा, साम स्टार्ट हो गया··· 'ओ हैप्पी होम' वेयर टू क्न हॉर्ट यूनाइटेड, इन ए होली फेत एन्ड ब्लेस्ड होम आर वन···' क्लारा का गला फंसने लगा। उससे गाया नहीं जा रहा था।···मगर गीत तैरता रहा—' बी प्रेज़ेन्ट होली सेवियर टू जॉयन देयर लविंग हैन्डस··· और फादर ने दोनों का हाथ एक दूसरे के हाथ में दे दिया··· क्लारा ने आँखें बन्द कर लीं।······'आवर फादर, विच आर्ट इन हेवन···एक सिसकी उठी ···दाइ विल बी डन इन अर्थ, ऐज़ इट इज़ इन हेवन······फॉर दाइन इज़ दी किंगडम, एन्ड दी पावर, एन्ड दी ग्लोरी,···फार एवर······' एमिन !······

जोड़ी निकल कर जाने लगी। डिक अपनी दुलहन के साथ जाने लगा।···लोग फूल फेंक रहे थे। मगर क्लारा एक कोने में खड़ी थी—बाइबिल थामे। अब वही उसका हमदर्द था। उसने पढ़ा—'एन्ड जीज़स क्रायड विद ए लाउड वायस, एन्ड गेव अप दी घ्योस्ट।'······'एन्ड दी वेल ऑफ दी टेम्पुल वौज़ रेन्ट इन टू पीसेस फ्रौम दी टौप टू दी बाटम।···'

वह अब भी चुप खड़ी थी······शांत-गम्भीर,···क्योंकि वह सिस्टर थी, वह कुँवारी कैथोलिक सिस्टर···मोनिका की सिस्टर······डिक की···सभी की सिस्टर······

जोड़ का सवाल



—हिसाब हो गया ?

—हुँ...

—ला दे...

लड़के ने तख्ती बढ़ा दी ।

—शैतान !...जोड़ के धर दिया । मैंने घटाने न कहा था । जिनगी में जोड़ काम नहीं देगा । बेटा, आज तलुक मैं 'घटाउ' करती आयी हूँ । घटाउ का अरथ है—निकाल देना । यही तो तिआग है । हमेशा घटाउ का सवाल किया कर, तब तू बड़ा बनेगा—महत्मा ।

—माई...ई...

—का है ?

—देख न कौन ठरा है ।

प्रीतो ने सिर उठाया । सामने पिरथी खड़ा था ।...

—हरामी ! क्यों आया है रे...घर में मेहरारू बैठा रही हीं, बिहाता का धरम छीनना चाहता है ।—भाग जा...

—प्रीतो,...अब भी कहूँगा...घटाउ मत किया कर, जोड़ सीख ले—वही काम देगा । अपनी जिनगी तो नाश करके धर दी, अपने मुन्ने को तो मत मार...

कौन मुँह झौंसा कहता है ।

कि मैंने जिनगी खराब कर रखी है...मैं तो मुन्ने के बाबू के साथ परसन हूँ। अपने 'जोड़' से सुअर्ग का लोभ देने आया... हरामी।...अरे पिरथी, मैं कहती हूँ मेरे सिर पर लहू सवार है...चला जा नहीं तो तेरे परान मेरे हाथों जायेंगे।—और उठकर उसने किवाड़ भिड़ा दिया।

पिरथी लौट चला। रास्ते भर सोचता रहा...प्रीतो कित्ती बदल गई हैं। पत्थर की बनी है, तभी से तो...।—बीड़ी निकाल कर मुंह में कोंचा। फिर काठी सलाई में रगड़ी—धुत साली! गीली है, तभी से तो बरती भी नहीं। फिर आगे बढ़ कर चाय की दुकान में उसने बीढ़ी धराई। दुकान वाला कुड़बुड़ाया—धुक धुकाने का शौक, एक माचिस भी फिस...हूँ।—मन घिरने लगा। वह लौट चला।...बीड़ी का धुईयां ऊपर-ऊपर उठ कर घेरने लगा...

—जोड़ न प्रीतो...

—नहीं पिरथी, मैं घटाउ करूंगी।

—कब तलुक घटाउ करेगी रे?

—अंतिम सुंश्रास तक...

—झुठ्ठी कहीं की...

—तू भूठा है...। देख लेना, मैं "घटाउ" न करती हूँ, अपना सारा सुख तेरे लिए घटा कर धर दूंगी। तू तो जोड़ता है, मेरे सारे के सारे सुख अपने में जोड़ लेना...

टन...टन...टन...घंटी बजती। फिर पाठशाला में छुट्टी सभी अपने-अपने घर भगते। पिरथी भी, प्रीतो को उसके घर तक छोड़ आता...

विचारों की टोली थमी। पिरथी की बीड़ी बुझ गयी थी उसने उसे कान में खोंस लिया। अभी आधी जो बाकी थी। यह सोचने लगा—प्रीतो किती बदल गई है। कहती थी...मैं घटाउ न करती हूँ, अपने सारे के सारे सुख घटा के धर दूंगी। तू जोड़ता न है, अपने में जोड़ लेना...और अब कहती है—हरामी ! भाग जा...मेरे सिर पर लहू सवार है। चला जा, नहीं तो तेरे परान मेरे हाथों जायेंगे...झुट्टी कहीं की।...

तभी अंगूठे में रोड़े से ठेस लग्‌ गयी। रूक कर उसनें देखा, नख उधड़ गया था।...लहू ऊपर झलकने लगा। भुंईया से थोडी मिट्टी उठाकर चुटकी से छिड़क दी, लहू जम गया। खिसियाकर उसने रोड़े को घूरा, फिर घुराकर उसे दूर फैंक दिया—सुसरा, फोड के धर दिया।...वह चलने लगा।

—अरे छोड़ न...

—जा नहीं छोड़ता।

—दुखता है रे...

—तो काहे को फैसन करती है, घोड़े की लगाम की तरह दो चुटिया !

—मैं धरती हूँ तो तेरा का जाता है ?

—मेरा का जाता है ?...वह खींचने लगा।

—आह !...छोड़ दे पिरथी, तू जैसे कहेगा वैसे ही बाल संवारूगी। अरे यह बनाव-सिंगार तो सब तेरी खातिर है। जो तेरे मन को न सगे—वह मैं थोड़े ही करूंगी। तू ही पाटी पार देना।—उसने चोटी छोड़ दी।

चोटिला पीछे करती हुई वह कहती—पिरथी, तू बड़ा

दुख देता है। मैं तो सब सह जाती हूं...पर कोई दूसरी होगी तो...

—दूसरी ? अरे तुझको छोड़ दूसरी काहे को आने लगी... —मैं जनम भर थोड़े...और वह प्रीतो के मुंह पर हाथ फेरकर कहता—तू बिसरा सकती है प्रीतो, मगर मैंने नेह लगाई है तो जनम भर निभाऊंगा।—वह उससे लिपट कर कहती—मेरा पिरथी कित्ता भला है। भला, ऐसे भले को भी बिसराया जाता है। मर जाऊंगी मगर तुझे नहीं बिसराऊंगी पिरथी।...

वह रुक कर सोचने लगा—कहती थी, तुझे बिसराऊंगी नहीं, पर भुलया के तो धर दी। अब देख कर ही उबल पड़ती है। उस दिन जब मेला से लौटा था।

—ले प्रीतो...

—गुलेबन्द ! मेरे लिए ?

—हाँ...

—पैसे कहाँ से लाया रे ?

......चुप्पी...

—बोल न पिरथी...

...?...

—नहीं भाखैगा तो मैं तुझ से कभी नहीं बतियाऊंगी।

—प्रीतो...

हूं...

—अगर कह दूंगा तो भी गुलेबन्द लेगी न ?

प्रीतो कुछ सोचने लगी। पिरथी ने उसकी ठुड्डी पकड़ ली...

—प्रीतो, तुझे मेरी कसम...

बस, ले लूंगी।

—प्रीतो, मैं कमाता-धमाता तो हूं नहीं। तुझे सरदी लग गई थी न, इसी खातिर गुलेबन्द खरीद लाया।...जुआ खेला था, प्रीतो !

—जुआ ! हाय राम—वह सिसकने लगी।

प्रीतो...

—पिरथी, तू जुआ काहे को खेलता है रे ! मुझे कुछ मत लाके दे...मगर तू जुआ मत खेल, भला मरद बन... भौगी भला मरद के सिवा और कुछ नहीं चाहती...मुझे मत सता पिरथी।

—मेरी चलन से तुझे दुख होता है प्रीतो, अब नहीं खेलूँगा—

वह उससे लिपट कर सिसकने लगी।...

—कित्ता भला है तू पिरथी।...इते प्यार से लेकर गुले-बन्द आया है, इसे मैं धर लेती हूं...मगर जुआ फिर न खेलना !

—नहीं प्रीतो, कभी नहीं—तेरी सपथ।...कहीं इसे फेंक तो नहीं देगी ?

—धत् ! परान तिआग दूंगी, परन्तु इसे अपने से परे नहीं करूंगी।...

पिरथी बड़बड़ाया—झुट्ठी कहीं की। परसों जब तनिक देखने भर निकल गया तो पिनक गई थी...

—क्या लेने आया है रे ?

—बस तुझे निहारने भर।...

—हरामी ! यहाँ कौन बैठा है जो बेर-बेर चला आता है। मैं कोई तेरी रखैल हूँ, जो बिना देखे कल नहीं पड़ती...

—प्रीतो तू झुट्ठी निकली—

—अरे साँच-झूठ की का बात...? मौगी बंसी हुआ करती है। मरद उसे ठोर से लगा कर फूंकता है। कोई सुर में बजती है तो कोई-कोई बेसुरी हो जाती है। लेकिन मेरी ज़िनगी की बंसी--बंसी नहीं है रे, मुरली है रे—आड़ी है, तिरछी है। तू टेर सकता ?...हूँ...। सुर निकाल भी लेता तो उसमें लय नहीं भर पाता—मैं जानती थी। इसी कारण तेरे हाथों में देने से डरी। तू फूँक मार-मार कर थक जाता और ठोर से लगी बंसी भुँईयां पर फेंक देता। ...जिसको बढ़िया समझा। उसको थमा दिया। तेरी तरह लफंगा नहीं है, मना करने से भी जुआ नही खेलता है। इज्जत से दो रोटी कमा लेता है। तू कौन गत का है ?...भाग जा...

—प्रीतो, बचपन की याद...

—अरे याद-वाद का...सब बचपन की भूल थी। मौगी का दूसरा नाम ही भूल है। भूल करने के बाद जो मौगी सुधर जाती है वह सुहागन हो जाती है। मरद को पाकर वह सब कुछ बिसरा देती है। परेम-वरेम तो मन का भरम है। जी बहलाने का एक साधन है। एक सपना है जो बिवाह हो जाने के बाद अपने आप भनक जाता है। मैं कहती हूँ—चला जा ! मुझे तेरी याद-वाद कुछ नहीं आती। मैं सदा 'घटाउ' करती हूँ''''घटाउ' करती आई हूँ। अपने मरद को पाकर, मैंने अपने जीवन से तुझे...तेरी याद...सभी को, घटा कर अलग कर दिया है।

पिरथी घर पहुँच गया—पिछली यादों के सहारे। अकेला कुँआरा घर, घरनी के अभाव में बड़ा ओछा—ओछा लगा।

ताखी से सलाई निकाल कर उसने दियली बारी–फक्...जल कर बुझ गयी। फिर अन्धेरा धुप!..तेल नहीं था। वह खुद ही बुद बुदाया...घर में कोई रहे तब न घर की फिकर करे...

अंधियारे में ही पढ़ मचिया पर बैठ रहा। उसका मत्था घूमने लगा। केवल एक बात उसके मत्थे में चकराने लगी...कित्ती झुट्ठी है, तरिया चलित्तर...मुझे तेरी–याद-वाद कुछ नहीं आती। मैं सदा घटाउ करती आयी हूँ। अपने मरद को पाकर मैंने अपने जीवन से तुझे ..तेरी याद–सभी कुछ घटा के धर दिया है।......हरामी! अरे पिरथी–मैं कहती हूँ चला जा, मेरे सिर पर लहू सवार है–भगा जा नहीं तो तेरे परान मेरे हाथों जायेंगे।—उसका जी भुतिया गया। अंधेरे में ही वह कुछ टटोलने लगा। कोई चीज उस के हाथ में आ गई–छुरा! वह बुदबुदाया–कहती है, खून सुवार है...हूँ...अब मेरे पर लहू चढ़ गया है। साली, गाली बकती है। बड़ी टें-टें करती है। सदा के लिए सुता के घर दूंगा तो जी को कल पड़ेगी।–उठकर उसने किवाड़ भिड़ाया।

फिर सिकड़ी चढ़ाकर ताला ठोंक दिया।...

वह तेजी से चलने लगा। जो करता, कब प्रीतो का घर आ जाए और वह छूरा भोंक कर भोंटी फाड़ दे आत्मा को तब शाँति मिले।...

धीरे से खिड़की की राह भीतर पैठा। मुन्ना चुपचाप सुन रहा था। एक दीया दूसरी कोठरी में हुकर–हुकर कर रहा था। बीच में दरवाजा था, तबना किवाड़ का। दीया का मद्धिम-मद्धिम प्रकाश इस कोठरी में भी फैला था। अपने को लुकाते-लुकाते वह दरवाजा के निकट पहुँचा। हाथ में छूरा

कसा था। जाड़े की रात कुड़ बुड़ाने लगी। भीतर बात करने की आवाज उठ रही थी। उसने अनुमान लगाया--दोनों परानी जगे हैं।--वह दीवार से सट गया। दीवट पर दीया धरा था। उसने देखा, चूल्ही के पास प्रीतो बैठी थी और उसका मरद उसके दाँये हाथ में चिथड़ा लपेट रहा था--पट्टी।...आह!--प्रीतो कराहने लगी। उसके पति की आवाज प्रीतो के कानों में पड़ी--ऐसा कौन सा मोह था जो सारा का सारा हाथ जरा बैठी। जरनी चूल्ही में हाथ डालने का फल है। गुलेबन्द जर ही जाता तो का होता, दूसरा आ जाता?--पिरथी ने देखा, प्रीतो को दिया हुआ उसका गुलेबन्द अधजली अवस्था में सामने पड़ा था।...प्रीतो बोली हाथ जर गया तो का हुआ गुलेबन्द तो बच गया। यही तो मायके से कुआँरेपन की निशानी लेकर आयी हूं। इसमें बचपन की यादें हैं...हंसी है...अगर यही जर जाता तो जीती कैसे, जीने का यही तो एक सहारा है, इसी के भरोसे तो परान थामे बैठी हूं।...मरते मर जाती मगर इसे जरने नहीं देती।--पिरथी कठिया गया।...वह खड़ा-खड़ा प्रीतो को निहारता रहा, वह बुदबुदाया...तू झूट्ठी नहीं है प्रीतो...मैं ही...वह खड़ा खड़ा उसे तकता रहा।...जब छूरा उसके हाथ से छूट कर उसके पैर में गया तब उसकी तन्द्रा टूटी। और फिर...

--कौन है? प्रीतो के मरद की आवाज।

--देखती हूं।...

बांये हाथ से दीया उठाकर प्रीतो कोठरी में आयी। पर वहाँ कोई नहीं था। उसने देखा, दरवाजा के पास एक छूरा पड़ा था और दो बूंद लहू। वह खिड़की के पास गई।

वहाँ चौखट पर उसे एक बूंद लहू दिखा।...वह सोचने लगी—कौन अनजाना उसकी द्वारी अपना लहू बहा कर चला गया।

—कौन है प्रीतो ?

—दो और एक...तीन ; तीन बूँद लहू और एक छूरा। उसने उत्तर दिया। सम्भवतः जीवन में प्रथम बार उसने जोड़ का प्रश्न सुलझाया था।

उस दिन के बाद से किसी ने भी बदचलन पिरथो को कभी नहीं देखा। और प्रीतो, उस रात के बाद है; तीन बून्द लहू उन तीनों के लिए—मुन्ना, मुन्ने के बाबू और वह...मगर छूरा ! इसी में उलझ कर रह गई।...

प्रेस और प्यालियाँ

अनामिल युवक है।

अनामिल सुन्दर है।

अनामिल लेखक है। इसी कारण राजस्थान से तीन महीनों के लिए हमारे बीच लखनऊ आया है। वह रोज़ प्रेस किये कपड़े पहनता है। सुबह-सुबह स्नान कर स्वयं धोता है और शाम प्रेस कराने आलमबाग चला जाता है।... उसकी यह आदत भली भी लगती है और बुरी भी। किसी दिन पिक्चर जाते समय पूछता हूँ—चलो तस्वीर देखने।

—कब लौटेंगे ?

—मैटनी तो चलेंगे...यही करीब सात बजते-बजते।

—बहुत देर हो जाएगी, मुझे तो कपड़े प्रेस कराने है। और वह टाल जाता मैं जल जाता हूँ।

उस दिन रविवार होता है। मैं रेडियो सुनता होता हूँ। तभी वह आते ही कहता है—एक कष्ट देने आया हूँ।

...कष्ट ?

—हाँ, जरा आलमबाग चलोगे कपड़े प्रेस कराने जा रहा हूँ।...मन में होता है, टके सा उत्तर दे दूँ। परन्तु यह विचार कर कि कल तो हम लोगों को बिछड़ना है, मैं रेडियो बन्द कर उठ जाता हूँ...चलो भई।

आलमबाग पहुंचकर, एक छोटी सी दुकान में उसने कपड़े रख दिए। फिर उसने कहा–बानू ! इन्हें प्रेस कर दो। तभी करीबन १८-१९ की लड़की ने मौढ़े सरका कर कहा... अभी किये देती हूं, पहले बाबू बैठो तो सही।...हम बेठ जाते हैं। मैं देखता हूं, एक सड़ी सी दुकान। कपड़े अजीब बेहूदे ढंग से पड़े हैं। एक ही कोठरी में बोरे टाँग कर विभीक्ति ! पहले मैं कपड़े—जहाँ हम बेठे हैं और दूसरे से किसी बुढ़िया के खांसने की आवाज आती है। सम्भवतः चूल्हा भी वहीं है, क्योंकि बानू वहीं से इस्तिरी लाती है।

इस्तिरी देख कर मुझे अजोब सी बेचैनी महसूस होती है मैं वहाँ से दूर होने की नीयत से कहता हूं—चलो बाहिर से चाय पी आएं। मगर वह फिर टाल जाता है। मुझ में फर्क होने लगता है। मैं बिगड़ जाता हूं...अगोर कर बैठना है तो बेठो, मुझे तो चाय पीनी है। वह मेरा हाथ दबाता है–अभी यार, समझते क्यों नहीं ! मुझे जैसे बिजली छू लेती है। अनामिल कहता है...बानू, सामने की दुकान में कह दो कि दो प्याली भेज दे। गर्म चाय। वह जाने लगती है। मैं उसे जाने के अन्दाज में देखता रहता हूं।

अनामिल मुझे छूता है। मैं चौंक उठता हूं। पूछता है क्या हो गया यार में सर्द पड़ जाता हूं। चाय आ जाती है। वह कहता है...लो,गर्मागर्म पी लो, ठीक हो जाओगे। मैं चाय की प्याली में गम गलत करने लगता हूं बानू इस्तिरी करती है। मेरा दर्द भी गर्मी से उमड़ जाता है। अनामिल अपना मौढ़ा मेरे करीब सरका लेता है।...

तो उस वक्त मैं दस-दस, बीस का रहा होऊंगा। भारत

पाक विभाजन के पश्चात बड़े भैया भारत आ गए। फिर उनकी नियुक्ति का प्रश्न उठा। कोशिशें शुरू हुई। तभी दुर्गापूजा की छुट्टी पड़ गई। मुझे भी कालेज से राहत मिली एक दिन भैया ने कहा—मैं दुर्गापुर जाऊंगा। अपना लाहौर का पुराना मित्र खन्ना वहीं आ गया है। बात-बात में उनके बड़े लड़के जानाथन ने भी अपनी बात पक्की कर ली। जानाथन बी० ए० में है और मैं एम० ए० में। अक्सर हां मैं उसको मदद कर दिया करता हूँ। इसी कारण वह अपने चाचा का विशेष ख्याल रखता है, किसी बात में भूलता नहीं। खन्ना साहब को तार दे दिया गया कि वे स्टेशन पर आकर मिलें।

गाड़ी रुकी। हम उतरे। तभी एक सज्जन बड़ी सहृदयता से भैया से मिले। ये खन्ना साहब थे। फिर उनकी पुत्री बागीकी वारी आई। और तब उसने अपनी सहेली नीता का परिचय दिया—अकल सम्बोधन के पश्चात कि नीता उसकी क्लासमेट है और कलकत्ता से छुट्टी बिताने उसी के यहां आ टिकी है। दोनों की दोनों एम० ए० में हैं।

घर जाकर बागी की माता जी से परिचय हुआ स्वागत-सम्मान हुआ...परन्तु सभी अंग्रेजी में। मेरा दम घुटने लगा। और फिर मैं उस परिवार से खिचा-खिचा रहने लगा जब सभी बातें करते होते मैं उठकर बाहिर आ जाता। मुझे जाता देख कर बागी कहती—हो इज टू शायी मैं अंग्रेजी में उत्तर देना चाहता, परन्तु बात हलक में अटक जाती।

भैया और भतीजे गाम उस परिवार में बेहद डूबे थे। और वह खानदान अंग्रेजी में। मुझे मायूसी होती। मैं बरा-

बर रेडियो में जी बहलाता। एक खूबसूरत सी डोली, जिस मैं फल आदि रहते थे। रेडियो रखा था। मैं सिलोन सुनता वह आती—माई गाड ! ओन्ली हिन्दी...हिन्दी। और फिर हिन्दी गाने अंग्रेजी में बदल जाते। मैं उठकर चला जाता।

उस दिन मैं बाहिर बगान में था। तभी बागी आई। मुझे अजीब भद्दे ढग से निहार कर हंसी, शायद मेरी बेवकूफी पर। फिर उसने पूछा—वाट आर यू डूइंग शर्म को पीते हुए उत्तर दिया—यूं ही टहल रहा था। वह एक गुलाब तोड़ लाई...आई थिंक यू विल लुक मोर स्मार्ट इन दी सूट-और मोटे से खादी के कुरते में वह गुलाब लगाने लगी। वह मेरे बहुत ही निकट थी। तभी जानाथन आ गया। वह जाने लगी, फूल गिर पड़ा। मैंने पैरों के नीचे दबा दिया घृणा से अथवा जानाथन की नजरों !

लाख-लाख खिंचा रहने पर भी मुझे बागी का एक काम अवश्य ही करना पड़ता था। वह नित्य सुबह कोई न कोई कपड़े अवश्य ले आती...इफ यू डोन्ट माइंड, प्लीज़ प्रेस इट। मैं प्लग लगाकर इस्तिरी करता और कपड़े ले जाते वक्त वह कह जाती...यू आर नाट ए वाशर मैन, वट ऐन आयल-पेंटिंग ......मैं सोचता,...आयल-पेंटिंग...तैल चित्र ! जिसे जितनी दूर से देखो वह उतना ही आकर्षक प्रतीत होगा। और फिर दूर से देखने के बाद ही निकट से देखने को लालसा जगती है।

उस दिन मैं रेडियो सुन रहा था। मेरा हाथ बैंड पर था। तभी वह आयी और डोली से झुक कर कुछ निकालने

लगी। उसका स्पर्श पाकर मैंने हाथ परे कर लिया। कुछ देर पश्चात वह पुनः आई और मेरे हिन्दी गाने उसके अंग्रेजी गीतों में बदल गए। मैं उठकर जाने लगा। अभी दो कदम ही गया था कि वे पुनः का रूप धारण कर गए। मैं ठहर गया। उसने कहा–आई नो, यू हेट मी !—और वह जाने लगी। मैंने उसे रोक कर पूछा–हिन्दी नहीं आती वह बोली ...आता है, वेरी लिटिल।

—कोई बात नहीं, बोलने की कोशिश करो आ जायगी ...वह मेरे समीप आ गई...तुम हमको सिखाएगा। उसके इस वाक्य से जाने मुझे कितनी तो खुशी हुई, और मैंने उसे अपने से लगा लिया। मेरे वक्ष पर सिर रखती हुई बोली... आयल-पेंटिंग !...मुझे लगा तैल-चित्र में एक सुनहला फ्रेम भी अब लग गया था।

अब रेडियो पर सदा हिन्दी गीत बजा करते। मैं साथ निभाने की कसमें खाता हिन्दी में और वह कभी नहीं छोड़ने का वचन देती...अंग्रेजी में। फ्राक प्रैस होते रहे और हम दोनों की छुट्टियाँ भी......तभी अनामिल बोल उठा...अब बस भी करो। मैं समझ गया, छुट्टी समाप्त हो गई होगी तुम घर लौट आए होगे और वह कलकत्ता चल दी होगी। ......नहीं अनामिल, ऐसा नहीं हुआ। मैंने गहरी साँस ली।

तो उस दिन वह कहीं जा रही थी जानाथन और नीता भी साथ थे। मैं बगीचे में था। जानाथन ने पूछा...क्यों चाचा, आप नहीं चलोगे मैंने आश्चर्य से पूछा-कहाँ वह भौंचक रह गया—आप ने नहीं मालूम। मैनेजर साहब ने पास भेजे है। हम पिक्चर...बीच में ही बागी बोल उठी...तस्वीर

ओल्ड है। मन नहीं लगेगा। मैं रेडियो आयदा इन्जाय करूँगा इसीलिए नहीं कहा। मगर जानाथन और नीता की जिद पर मुझे चलना पड़ा। बागी खुश नहीं लगी।

हम ऊपर बालकोनी पर थे। मैं, तब बागी...एक सीट खाली, फिर नीता और जानाथन। खेल प्रारम्भ होते ही कोई आया और बागी की बगल में बैठ गया। मैंने अनुभव किया उसका हाथ बागी के कन्धे पर था।...इन्टरवेल होते ही मैं उठकर जाने लगा। वह आई। ...कौन था वह आदमी उसने कहा—मैनेजर। मैं चलने लगा। उसने मेरा हाथ थाम कर कहा—ओह ! तुम सब फैसेलेटीज खोजता है। मगर घर तुम्हारे वास्ते और बाहर तो...। मैंने उस का हाथ झटक दिया।

उस दिन फिर उससे कोई बातें नहीं हुईं। दूसरे दिन भी खामोशी। तीसरे दिन वह जाने को थी। कपड़े लेकर आई। प्रेस कर दो।—मैं प्लग लगाकर इस्तिरी करने लगा। हाथ तो गुस्सा से काँप रहा था। रेशम का फ्राक आखिर जल ही गया। मैंने उसे और कपड़ों के बीच रख दिया।

रात, वह जाने को हुई उसने वही फ्राक पहनने के लिए निकाला। चीख पड़ी—यू फूल, वाट यू हैव डन और फ्राक मेरे मुँह पर दे मारा। मैंने फ्राक के जले भाग को देखा, बागी को और तब खुद को।

नौ बजे गाड़ी जाती थी। सभी उसे छोड़ने जा रहे थे मैं रेडियो सुन रहा था। भैया ने चलने को कहा। मैंने उत्तर दिया—नहीं, मैं रेडियो ज्यादा इन्जाय करूँगा। बागी पर क्या

असर पड़ा कह नहीं सकता, परन्तु वह मोटर पर जा बैठी। भैया ने कहा—चलो भी, रेडियो तो फिर भी सुन सकते हो।

हम स्टेशन आए। गाड़ी आई। बागी चढ़ गई। सभी गाड़ी में चढ़े। और मैं था कि हैन्डिल पकड़े बाहिर खड़ा था। समय होते ही सभी उतर गए। बागी दरवाजे के पास आई। उसने मेरे हाथ को छूआ—तुम सब लड़कों से अलग निकला—बट फैलियर। हम को, सब लड़का एक दूसरे के सामने टच कर खुश हुआ, मगर तुम—तुम एक ही लव जानता है...हार्ट से मगर जो हार्ट से लव करता है वह इस जमाना में धोखा खाता है। आज कल वही जीता है जो धोखा देने जानता है और धोखा देने के लिए बॉडी से लव किया जाता है, हार्ट से नहीं।...और वह खिलखिला कर हंस पड़ी।...सीटी के साथ ही गाड़ी चल दी। मेरा हाथ उसके हाथ से छूट गया। मुझे लगा, ऑयल पेंटिंग का सुनहला फ्रेम टूट गया...हमेशा के लिए।

मैं चुप जाता हूँ। अनामिल मुझे देखने लगता है तभी बानू बोलती है—आज इतने ले जाओ बाबू, कल और ले जाना। अनामिल कहता है—अरी नहीं, कल तो हम अपने-अपने प्रान्त लौट जा रहे हैं। बानू का इस्तिरी करता हाथ रुक जाता है। वह अनामिल को देखने लगती है। अनामिल आँखें नीची कर लेता है।...तभी कपड़ा जलने की गंध उठती है। बानू जल्दी से इस्तिरी उठा लेती है। मगर अनामिल चुप रहता है। बानू की पीठ हमारी ओर हो जाती है। वह कहती है...शाम को ले जाना बाबू। मुझे उसकी आवाज टूटती सी लगती है। अनामिल प्रेस किये कपड़े उठा कर

बाहिर आ जाता है। मैं उठता हूँ, तभी बानू पलटती है। उस की आंखों के आंसू गर्म-गर्म इस्तिरी पर गिर कर जल जाते हैं और बोर के दूसरे बंटे भाग में भाग जाती है। मेरी नजर मोढ़े की बगल में पड़ी चाय की उन दो खाली प्यालियों पर गई और मैं यह सोचता हुआ उस सड़ी सी दुकान के बाहिर आ गया...दो खाली प्यालियां...शायद एक मैं और दूसरी बानू !

जले भुने हाथ

——लाओ, मैं खोल दूँ !

——छोड़ो भी, मैं खुद ही······

——फालतू ज़िद । किसी बात की कोई हद हुआ करती है । एक दायरा हुआ करता है । एक हाथ में तो पट्टी बंधी है, दूसरे से खोलने का शौक······कहीं उधड़-बुधड़ गई तो बिना बुलाई मुसीबत ।

——नज्मा, तुम हज़ार तोहमतें भेजो मेरी इस ज़िद पर । परवाह नहीं, यही तो मेरी ख़ासियत है ।——हाथ बढ़ाते हुए नुरुल ने कहा ।

——अल्लाह खैर करे ! मैं तो कोफ्त हो गई इस ज़िद से ।——पट्टी खोलती हुई नज्मा बोली ।

पट्टी का आख़री सिरा खोलते ही नज्मा चौंक पड़ी——या रब्ब ! सारा का सारा हाथ झुलसा बैठे ?——नुरुल अपने जले हाथों को देखता रहा ।

तभी बच्चा रोने लगा···ज़ार-ज़ार । वह उसे फुसलाने के इरादे से उठा । मगर जैसे ही उसने हाथ आगे किया, बच्चे की आवाज़ और तेज़ हो गई । खिड़की की राह, बाहर गली में पट्टी फेंकती हुई नज्मा चीख पड़ी——अलग ही रखो । कुछ ख्याल भी है कि कितना बदसूरत हो गया है हाथ ।···

नुरुल को यह बात लग गई। मगर वह इस दर्द को बड़ी खामोशी से पी गया।

उसने ग़ौर से देखा, सचमुच उसका हाथ बहुत ही डरावना हो गया था। उसे खुद अपने हाथों से नफरत होने लगा।······

दिन नये पत्ते की तरह आते—हरे···चमकदार और फिर बड़े ही इतमीनान से झड़ जाते, सूख कर। अब नुरुल ने महसूस किया, न सिर्फ बच्चा ही उससे नफरत करता है··· बल्कि नज्मा भी जहाँ तक बन पड़ता है, खिचो-खिची रहती है।

एक दिन ऊब कर नुरुल चीख पड़ा—लानत है ऐसी जिन्दगी पे···।—बगल की कोठरी से नज्मा बाहर आई—किस अभागे पर लानत तलब हो रही है? उसी चिड़चिड़ाहट में वह बोल गया—इस जानवरों को जिन्दगी से तो बेहतर इसमें है कि जहर खाकर मौत के आगोश में···—उसके मुंह पर हाथ रखती हुई नज्मा बोली—ये क्या बच्चों सा पागल-पन? कभी तो हौसला से काम लो।

बड़ी मायूसी और जलन से नुरुल ने कहा—नज्मा, तुम हौसला तलब करने को कहती हो। मगर वह लाऊँ कहाँ से जो पहले ही वक्त के मजबूत पत्थर तले पस्त हो गया है? इसी खातिर तो मैंने रिश्ते उम्मीद भी तोड़······—बीच में ही नज्मा टपक पड़ी—इन फालतू बातों पर आसमान का कहर हो, मेरी वफा कयामत बनकर इन्हें मिटा दे······मेरी जिन्दगी से तुम्हें कौन छीन सकता है, मेरे दिलरुबा!

नुरुल की आँखों में नई चमक पैदा हो गई। उसने बड़े

ही प्यार के लहजे में नजमा की तरफ निगाह की। कुछ ही फासले की दूरी को क़रीब में बदलती हुई नजमा बोली— अच्छा, आज तो बता दो···अपना हाथ कैसे जला बैठे ?

नुरुल खामोशी से अपना हाथ देखता रहा। नजमा ने अपनी हथेलियों में उसके चेहरे को भर लिया—मेरे नूर ! खुदा का वास्ता देती हूँ, कुछ तो कहो। तुम्हारी यह खामोशी, मेरी जान ले लेगी।······

—मेरी नज्म ! अजीब दर्द और टीस में यह अफसाना डूबा हुआ है। हक़ीकत जान कर, तुम्हें मुझसे नफरत हो जायेगी।···

अक्सर हाँ, इंसान दुनियाँ के डर की वजह से भागता फिरता है। मगर कभी वो भी लह में आते हैं जब वह अपने आप से भागने की कोशिश करता है। उस वक्त, मेरी भी कुछ वैसी ही हालत थी। मैं भरसक यही कोशिश करता कि दुनियां की पाक़-नापाक़ नज़रों से दूर कहीं गुम हो जाऊँ। इसी तन्हाई की तालाश करता-करता मैं यहाँ से बहुत दूर मुजफ्फरपुर जा पहुँचा। अपने मन की तसल्ली के मुताबिक मैंने एक होटल में एक कोठरी छाँट निकाली। ऊपरी मंजिल पर मेरी अकेली कोठरी और मैं। सामने ही जेलखाने की चहारदीवारी। मेरा जी रह-रह कर करता—काश ! मैं भी इन दीवारों में कैद होता। दुनियां की नापाक़ नज़रों से दूर·········

सामने के पेड़-पौधे, बर्फ से भी सफेद आसमान, किसी नाज़नीन की मुस्कराहटों से भी अजीब हवा—मुझे सारी की सारी चीज़ें बेहद पसन्द आईं। मैंने मेज़ खिड़की के ही

करीब लगा ली। । नई कहानी का ख़ाका तैयार करने बैठ गया। तभी जेल का घण्टा गरज उठा—टन···टन···टन···। अपनी इस दर्दनाक आवाज़ से उसने वक्त के बहते दरिया में एक और कश्ती छोड़ दी। मैं सोचने लगा—एक घंटा गुजर गया, मगर मैंने कहानी शुरु भी नहीं की···। इतनी जल्दी वक्त के निकल जाने का मुझे अफसोस हुआ। मैंने आँखें उठाईं। तभी जेल को देख कर ख्याल आया—एक मैं हूँ जिसे वक्त के बह जाने का ग़म है मगर जेल के कैदी कितने खुश हुए होंगे कि उनकी सज़ा का एक घंटा और टल गया।

तभी फुदकती हुई एक जोड़ी आई—गौरैया। चूंकि वह लिखने का समय था और मैं फिर से अपने नेक काम में मश-ग़ूल होने ही वाला था कि चिड़ा इस बेहूदे ढंग से उड़ा कि मेरा वह पन्ना जिस पर मैं लिख रहा था, मेज के नीचे जा पड़ा। उसकी हरक़त पे मेरा बिगड़ जाना ही जायज़ ही होता, मगर जाने क्यों मुझे ज़रा भी गुस्सा नहीं आया। एक हलकी हँस कर, मैंने कागज उठा लिया।

धीरे-धीरे मेरे ये नेक मेहमान दोस्त में बदल गये। बिना नागा वे पहुँच जाते। मैं अपने नाश्ते से कम से कम एक कचौड़ी जरूर बचा लिया करता—उनकी खातिर। अनजाने ही इन से एक अजीब अपनापन जुड़ गया।

मुझे इस होटल में सभी तरह की आफियत थी। अच्छा सा पलग, आदम क़द आईना, कुर्सी-मेज और अंगीठी।···

जोड़ी में से एक, अक्सर हां आईना से ही खेला करती। अपनी सूरत देख, ताज्जुब महसूस करती और उसमें पैठ जाने की जी-जां से कोशिश करती। अपनी चोंच से उसे

कुट-कुटाती और जाने क्या-क्या हरकत करती। मैंने अंदाजा लगाया, हो न हो यह जात की औरत है—मादा। तभी तो ये सजावट'''।

दूसरा, जो चिड़ा था'''खिड़की पर बैठा-बैठा मुझे निहारा करता। जब तक मैं लिखा करता जोर से दोहराता—वह वहीं बैठा रहता। मगर चिड़ी का ज्यादा वक्त अपनी सूरत निहारने में ही गुज़रता।

एक दिन मैं लिखने में मशगूल था। रोज़ की तरह चिड़ा खिड़की पर था। तभी चिड़ी भी खिड़की पर आकर बोली—'मुझे तो यह शख्स सनकी नज़र आता है। पागलों की तरह जाने रोज-रोज क्या लिखा करता है ?, चिड़ा बिगड़ गया—चुप भी रहो। यह मेरी तरह शायर नहीं, अफसाना नवीस है। मैं तो नज्में गाकर सुनाया करता हूँ। मगर य साहब अफसाना लिखा करते हैं। इस बार चिड़ी हँसी—' ओह ! तो ये भी तुम्हारी तरफ सड़ियल चीजें ही कहता होगा। सच पूछो तो मुझे तुम्हारी चीजें ज़रा भी पसन्द नहीं।—मैंने देखा, चिड़ा का मुँह चढ़ गया था। मगर वह कुछ बोला नहीं। मैंने कलमदान में कलम रखते हुए कहा—'मेरे नेक दोस्तो, मैं शायर भी हूँ। लो, मेरी एक चीज़ सुनो—

कभी नेकी भी उसके जी में गर आ जाय है मुझसे,
जफाएं करके अपनी याद, शर्मा जाय है मुझसे।
खुदाया जज्बए-दिल की, मगर तासीर उलटी है—
कि जितना खींचता हूँ और खिंचता जाय है मुझसे।'

मैं चुप हो गया। चिड़ी ने अपनी राय दी—गला अच्छा है। चीज बेकार की है।—चिड़ा ने पिनक कर दर्याफ्त

किया—कुछ समझी भी ? जवाब मिला—नहीं।

फिर चिड़ा बोला—खाक शायर बना है। गालिब की चीज कह गया, चोर है। और तुम, समझना नदारत…चीज रट्टी है। इसी नासमझी और औरत वाली अक्ल से तो किसी ने जीते जी गालिब को समझा नहीं। चलो यहाँ से, इस चोर से क्या सुना जाय।

मेरा सिर उस शायर की तरह झुक गया जो मुशायरों में दूसरों की नज्में पढ़ते वक्त टोक दिया जाता है।

चिड़ी पूछ बैठी—तुम चोरी नहीं करते ? चिड़ा ने सिर उठाकर फरमाया—नहीं। मैं वही कहता हूँ जो देखता हूँ, महसूस करता हूँ। झूठ-मूठ रोब गालिब करने के लिये चोरी नहीं करता और न इस तरह की चोरी से अदब को नापाक ही करना चाहता हूँ।…दोनों उड़कर चले गये।

फिर दो दिनों तक चिड़ा नजर नहीं आया। केवल चिड़ी आती। शीशा में खूबसूरती का अंदाजा लगाती। बार-बार पलट कर खिड़की की तरफ देखती और चिड़ा न आने पर मायूस होकर उड़ जाया करती।…

एक सुबह :—

मैं नाश्ता कर चुका था। चिड़ी, कचौड़ी का चूर खा रही थी। तभी चिड़ा आ पहुँचा। उसे आया देखकर चिड़ी धीरे से हंसी। मगर तुरन्त ही नाराजगी का बहाना बनाकर मुंह फेर लिया। मुझे उसकी यह अदा प्यारी लगी। क्योंकि हर औरत की तरह उसने इस नाराजगी को जताकर फायदा उठाना चाहा था।

चिड़ा उसके पास सरक आया। चिड़ी चुप रही। चिड़ा ने बड़े प्यार से उसे अपनी चोंच से गुदगुदाया। हंसती हुई चिड़ी परे हट गई—चलो हटो भी ! छेड़ अच्छी नहीं लगती। चिड़ा फिर उससे जाकर सट गया। इस बार वह हटी नहीं। चिड़ा ने पूछा—बच्चों को कुछ खिलाया-पिलाया ?' चिड़ी तिनक गई—तुम्हारी तरह पत्थर दिल थोड़े हूँ···मेरी नहीं तो कम से कम बच्चों की तो सूरत देख जाया करो। जब सीने में वालिद का दिल ही नहीं था क्यों···।—इतना कहकर वह रोने लगी। चिड़ा उसे मनाता रहा।

जब वह चुप हुई तो उसने पूछा—आज तक थे कहाँ ? चिड़ा बोला—तुम्हें मेरी नज्में पसन्द नहीं, इस खातिर अफसाने की तलाश में था। कहानी के चक्कर में उड़ता-उड़ता मैं 'कल्याणी' के एक रेस्तरां में जा पहुँचा क्योंकि आजकल का साहित्यकार, रेस्तरां में प्लाट खोजा करता है।

—मैंने देखा, सारी की सारी मेजें भरी थीं। सिर्फ एक मेज पर एक अकेली लड़की बैठी थी। संगमरमरी रंग, हंस के डैनों की तरह सफेद साड़ी, अपने आप में खोई-खोई कोई आँखें—ठीक किसी उर्दू शायर की अनजान मेहबूबा की तरह।···मैं वहीं खिड़की पर बैठा रहा।

वह हसीना, मुझे किसी अनकही कहानी की परीवश (नायिका) सी लगी। बड़ी खामोशी से वह चाय पी रही थी। तभी उसकी बगल वाली कुर्सी पर एक नौजवान आकर बैठ गया। उसकी भी चाय आई। उसने लड़की से कुछ दर्यापत किया। मगर कुछ बोलने के बजाय, हसीना ने सिर

हिला कर जवाब दिया। मैं पेशोपेश में था, जी धक्-धक् कर रहा था—कहीं मेरे अफसाने की परीवश गूँगी तो नहीं ?

मैं किसी नतीजे पर पहुँचने ही वाला था कि वह उठकर गुसलखाने की तरफ चल दी। एक बार मैंने उड़कर देखा, लड़की की प्याली में आधी से ज्यादा चाय बाकी थी। मैं सोचने लगा, वह फिर आयेगी। वक्त काटने या इन्तजारी के इरादे से नौजवान ने दूसरी प्याली मंगवाई। काफी देर बाद वह लौटी। इस बार उसने हाथ मुँह धोकर कंघी कर रखी थी। मुझे वह पूनम में नहाई गोरी चाँदनी का कोई सगी लगी।

तभी एक बूढ़ी औरत एक नन्हीं सी बच्ची को साथ लाई। उसे देखते ही, मेरे अफसाने की परीवश आगे बढ़ी और बच्ची को गोद में ले चूमने लगी। बूढ़ी चुपचाप खड़ी थी। मैंने अंदाजा लगाया—बच्ची जरूर ही इसकी अपनी है। फिर सोचा, अगर बच्ची है—तो इसका वालिद ? मैं अपने ख्यालों को जोड़ ही रहा था कि तीनों बाहर आये। मैं भी उड़ आया—खुली हवा में। तीनों बाईं ओर जाने लगे। मैं अपनी परीवश का पीछा कर रहा था।

वे घर पहुँचे—रामबाग रोड। मैं वहाँ काफी देर ठहरा। मगर किसी भी नतीजे पर पहुँचने में कामयाब न हो सका।

इतना कहकर चिड़ा चुप हो गया। चिड़ी उसे शक की नजरों से देखने लगी। मुझे हँसी आई—शक्कीपन औरतों की खास बीमारी है। मुझे भी चिड़े की कहानी से दिलचस्पी सी हो गई।

तभी जेल का घंटा गरज उठा—टन···टन···टन···मैं

चौंक गया। तभी चिड़ी बोली—यह आदमी भी अजीब है, घंटे की आवाज़ से डर जाता है। वक्त बीतता है; बातें; वक्त बिताना भी तो एक फन है।—

फिर दोनों उड़ गये।······

दूसरी सुबहः—

अफसाने के जल्द पूरे होने की मुझमें खुद तमन्ना जाग उठी थी। चिड़ी आई। रोज़ की तरह आईना से लगी। मगर चिड़ा नहीं आया। चिड़ी, बहुत मायूस होकर उड़ गई।···

तीसरी सुबहः—

मैं उर्दू की किसी किताब में खोया था। तभी उड़ते हुए दोनों आये। मुझे बड़ी खुशी हुई। चिड़ी भी अब तक उस अफसाने में उलझ गई थी। आज वह शीशा में सूरत निहारने नहीं गई। बैठते ही पूछ बैठी—उस लड़की का कुछ पता चला ?

चिड़ा कहने लगा—कल जब मैं बाज़ार से गुज़र रहा था, मैंने उसे एक चाय की दूकान में जाते देखा। मैं भी उड़ कर एक बेहतरीन जगह पर जा बैठा।

उसने चाय और कुछ नमकीन मंगवाये। उसका बैग वहीं मेज पर था। बगल वाली मेज़ पर एक अधेड़ आदमी बैठा था।

नमकीन ख़त्म कर लड़की हाथ धोने गई। तभी वह आदमी, सभी की नज़रें बचाता हुआ उसका बैग लेकर बाहर

आ गया। मैंने उस चोर का पीछा किया।

कुछ दूर, एक पेड़ के साया तले उसने बैग खोला। एक रुपये का एक नोट और कुछ कागजात निकले। वह ऊँची आवाज में पढ़ने लगा। मैं पेड़ की डाल पर था।...

बम्बई
१०-२-५७

मेरी जिन्दगी माहे,

बहुत मजबूर हूँ। हालात बयान नहीं कर सकता। जालिम ! तुम्हारी याद बहुत तड़पाती है—तुम क्या जानो ? जी चाहता है, दुनियावी क़फस तोड़ कर तुम्हें यहाँ से बहुत दूर ले जाऊं—जहाँ हमें जुदा करने वाले फौलादी हाथ न हों जल्द ही आकर निकाह पढ़वा लूंगा। बच्ची का नाम, अपने ही नाम पर रखना—क्योंकि तुम्हारा नाम बहुत शीरीं है।

तुम्हारा ही
अली

उसने उस कागज को मोड़ कर फेंक दिया। दूसरा कागज पढ़ने लगा—

बम्बई
१५-४-५७

मेरी महनाज आपा,

तुम्हारे कहने के मुताबिक मैंने अली साहब की खोज की। हकीकत दरयाफ्त कर सदमा हुआ। वे शादी शुदा हैं। दो बच्चे हैं। अभी चंद हफ्ते पहले, पाकिस्तान चले गये—अपनी बीबी और बच्चों के पास। अब उनके लौटने की उम्मीद नहीं।

आपा, तुमने मर्द जात पर ईमान लाकर बुरा किया। अल्लाह ताला ने भी आदमी पर भरोसा लाकर धोखा खाया था। ये मर्द—पाक मुहब्बत के नाम पर बदनुमा दाग हैं। ये औरतों से खेलना जानते हैं और बतौर निशानी छोड़ जाते हैं—नाजायज बच्चे, रोती माँ, रोते बच्चे और हामला औरतें।

तुम्हारा भाई,
हसन

उसने तीसरा पत्र पढ़ा—

मुजफ्फरपुर,
२८-४-५७

हसन भाई,

तुम्हारा खत मिला। मगर अब मैं दुनिया की नजरों में बहुत गिर गई हूँ। जहाँ भी जाती हूँ, वहीं ताने—बदचलन, बेहायी, और जाने क्या-क्या तो ?

अब बरदाश्त नहीं होता।

तुम्हारी,
मदनाज बहन !

उसे अधेड़ आदमी ने पढ़ कर इस कागज को भी मसला कर फेंक दिया। रुपया जेब में रखकर बुदबुदाया—'लैला है।' —फिर अपने आप हंसता हुआ एक ओर चल दिया।

इतना बयान कर चिड़ा चुप हो गया। चिड़ी ने एक ठंडी साँस ली। मैंने अपनी कापी बन्द कर दी। मुझे यह अफसाना 'कलाइमेक्स' पर पहुँचता नजर आया। चिड़ी ने चिड़ा को बड़ी ही ददीली आंखों से देखा। मैंने देखा, चिड़ी की आंखों में आंसू आ गये थे।...

चौथी सुबहः—

मैं कुछ देर तक राह तकता रहा, मगर मेरे दोनों दोस्त नहीं आये।...उनका नहीं आना, मुझे भीतर ही भीतर खटका।

पांचवीं सुबहः—

मैं कुछ देर से उठा। तबियत मुआफिक नहीं थी। मैंने उठकर अंगीठी सुलगाई। चाय बना कर पी ही रहा था। कि मेरे मेहमान आ गए। चिड़ी शीशा के पास गई। अंगीठी जलती छोड़ मैं दोनों को तकने लगा।

अपने को निहार कर चिड़ी पूछ बैठी—आईना कहता है कि मैं बहुत खूबसूरत हूँ। चिड़ा कुछ सोचकर बोला—किस चापलूस की बातों में पड़ती हो। कभी इस कमबख्त ने भी किसी को बदसूरत बताया है।

चिड़ी फिर पूछ बैठी—तुम ही बताओ न, मैं हसीन हूँ ? चिड़ा हंसा—'दरोगेशक'। चिड़ी हर औरत की तरह तारीफ सुनकर निहाल हो गई।

तभी उसे ख्याल आया—लड़की का क्या हुआ !

चिड़ा कहने लगा—कल जब उसके घर गया तो काफी भीड़ थी। देखकर दंग रह गया। देखा, उस लड़की को लोग गाड़ी में चढ़ा कर अस्पताल ले जा रहे थे। उसने जहर खा लिया था। वह बेहोश थी। मैं भी उड़ा...

अस्पताल में नली देकर उलटी कराई गई। वह होश में आते ही चिल्लाने लगी—डाक्टर साहब ! खुदा के लिए मुझे, बचा लीजिये। मैं मौत नहीं चाहती हूँ। मेरी ऊपर की औरत दुनियाँ के तानों से तंग आकर मर जाना चाहती थी। मगर

मेरे अन्दर की मां मरना नहीं चाहती। डाक्टर साहब ! मुझे मेरी बच्ची की खातिर बचा लीजिये। उसे कौन देखेगा ? उसकी परविरश कौन करेगा ? उसे नहलायेगा कौन ? खिलायेगा कौन ?—मुझे दुनियां की उलटी-सीधी बातों का गम नहीं, मुझे अपने शोहर के फरेब से वास्ता नहीं, अब मैं मां हूं...सिर्फ माँ !"

उसके आँसू मुझ से देखे नहीं गए। मैं लौट आया। चिड़ा कह कर चुप हो गया। फिर बोला—कल ही मैंने जाना, शायरी की रंगीनियों से उठकर, अफसाना बनाना कितना मुश्किल है। अफसाना—जिन्दगी की जागती तस्वीर। चिड़ा चुप हो गया।

मैंने अपनी कलम बन्द कर दी। काँपते हाथों से कापी के उड़ते पन्नों पर एक मोटी सी किताब रख दी। मुझे अजीब सा लगने लगा।

अफसुर्दगी में डूब कर चिड़ी ने कहा—मर्द जात बहुत फेरबी है।—फिर रुक कर पूछ बैठी—तुम तो मुझे दगा नहीं दोगे ?

चिड़ा बोला—अगर मैं चाहता तो तुम्हें कब का छोड़ कर चला जाता ? अभी तक निकाह भी तो नहीं पढ़वाया...। आज तुम आसरे में हो कि मैं तुम्हें पाक रिश्ते में बांध लूंगा मगर नहीं, आज मैं तुम्हें हमेशा के लिए छोड़कर जाऊंगा...मर्द जात पर बदनुमा धब्बा बनकर नहीं, बल्कि उस दाग को मिटा कर। मैं यह जानता हूँ अगर जिस्म से पाप किया जाय तो उस से शिफा पाने के लिए जिस्मानी तकलीफ उठानी चाहिए।...

तुम बच्चों को सम्भालना...और चिड़ी के कुछ कहने के पहले ही उसने अपने आप को जलती अंगीठी में गिरा दिया।···

मैंने जल्दी से उठकर, हाथ की परवाह किए बिना उसे अंगीठी से निकाल लिया। चिड़ा भुन गया था। चिड़ी उसके पास आई। तभी जेलखाने का घंटा टन···टन बजकर चिड़ी का मजाक उड़ाने लगा—खबरदार! वक्त के आगे सिर झुका कर रहो। वक्त से डरो। एक न एक दिन में सभी को निगल जायेगा।—चिड़ी रोती हुई खिड़की की राह उड़ गई।

उसके उड़ जाने के बाद मैंने महसूस किया, मेरा हाथ बुरी तरह से झुलस गया ···। तभी मुझे ख्याल आया—ये मेरे पापों की सजा थी। मेरे नापाक इरादों का फल था।—मैं उतनी दूर सिर्फ इस लिए गया था कि तुम्हें मेरा पता न चल सके क्योंकि तुम 'माँ' बनने वाली थी। मैं तुमसे किनारा करना चाहता था।

नज्मा ने नुरूल का हाथ अपने हाथों में ले लिया। नुरूल बोला—'हाँ, सिर्फ इन हाथों के जलने की वजह से मैं वापस आ गया। चिड़े की कुर्बानी बेकार नहीं गई।—अब मैं तुम्हें छोड़ कर नहीं जाऊंगा...निकाह पढ़वा लूंगा। हमारा बच्चा जायज कहलायेगा।

नज्मा नें उसके जले हाथों को चूम कर कहा—मेरे नूर! ये हाथ मुझे बहुत अजीज हैं। इसीलिए कि इन्हीं जख्मी हाथों ने तुम्हें फिर से मेरे करीब ला दिया है।—और अपने सिर पर शौहर का साया खोजती है। क्यों न वह अपाहिज ही हो।···

छोटी-छोटी:

छोटे-छोटे हाथों के बीच रोटी...छोटी-छोटी, बेलन-चौका के बीच रोटी...छोटी-छोटी, तवा-हाथों के बीच रोटी···छोटी-छोटी और फिर हाथों के बीच रोटी...छोटी-छोटी।

—उधर दे न !

और रोटी उधर के पत्तल पर गिरी...छोटी-छोटी।

—रोटी है ?

—तब ?

—इतनी छोटी जैसे पूरी...।

रोटी मुस्कुराई।

—पूरी !...तब रोज खाओ न। कौन सी दुकान में रोटी के दाम पर पूरी मिलेगी ?...रोटी हंसने लगी। खुलकर...मन भर की हंसी।

—पूरी खाने ही तो जाता हूं।

खाने वाला हंसा।

—ला, मैं बना दूं...इन्हें देर होगी।

—देर, अरे नहीं-नहीं ! इसे ही सेंकने दो। मैं खा तो रहा हूं, बहुत स्वादिष्ट बनाती है।—ग्राहक खाने लगा। दाल में रोटी डूब गई...पुर गई।

—बड़े काम की है तेरी...

—हां, सभी यही तो करती है। मुझे हाथ भी धरने नहीं देती।...

हुक्के का धुआं उड़ा। बूढ़ी खांसी उड़ी।

—भगवान करे, बड़ी होकर फले-फूले।

ग्राहक मुस्कुराहट से ढंक गया।

तवा-हाथों के बीच रोटी...छोटी-छोटी, अपने आप में फूल गई।...

मझली:

रोटी मझली हो गई। बेलन के दबाव से, लोइयाँ पसर गई—रोटी उभर गई।...बेलन वही-चौका वही। तवा वही। ...आँच बढ़ी, ग्राहक घटे। घट गए, जैसे उम्र घट-घट जाती है।

—रोटी है ?

—तब ?

—तब की बच्ची। जबान लड़ाती है। ऐसी ही खिलानी है तो कल से दुकान बन्द कर दे।...खाने वाला पिनक गया। शायद उसे मजा नहीं आया।

रोटी चुप रही। चुप्पी की तरह।

—हुँ...तिरछी-कुबड़ी ! न कोई शक्ल न सूरत। भला ये निगली भी जाएगी।

—रोटी गुमा गई।

—काहे को नाराज होते हो ? तुम खाओ।...हट मुंहजली, एक-दो तो आ जाता है, उसे भी खिला नहीं पाती।

खाने वाला और नहीं ठहरा। आग्रह भी व्यर्थ।

गर्म होते तवा पर, रोटी भीतर ही भीतर घुट गई।

बड़ी-बड़ी:

लोइयाँ बढ़ गई...रोटी बड़ी हो गई। तवा अपने में खुश। बेलन स्पर्श कर हंस उठा।...चूल्हे की गर्मी बढ़ गई। खाने वालों की खुराक ही गई दुगनी। एक रोटी के बजाय दो अधिक खा जाते—खाने वाले। दो, खाने में जो भी समय और

लगता...उसमें और-और रोटी सिकती...बड़ी-बड़ी। साथ ही सिकती आँख !

—एक और दे न !

रोटी पत्तल पर गिरी।

—सुन न !

रोटी करीब आती।

—यूं न हंसो, मेरी आँखों में डूब कर···
में खुद ही, खुद से शरमाने लगा हूं।

—हट मुआँ।

—रोटी मुस्कुरा देती। खाने वाले की भूख और भी जग जाती।

—एक और दूं ?

—तेरी इच्छा।

—पत्तल पर एक और गिरी।

—खायेगा तू, इच्छा मेरी ?

...हाँ रे, तेरे आगे तो हम गुलाम हैं। तू जितना खिलाए हम उतना ही...

रोटी अदा देती।

—बहुत बढ़िया सेंकती है !

—सच ?

—तेरे से काहे की झूठ !

—रोटी फिर सिकने लगी...बड़ी-बड़ी। दुकान चलने लगी···बहुत-बहुत। खूब-खूब।

जली-जली:

रोटी जल गई।···जब से वह परदेस गया है, जल जाती

है सुसरी।...जब भी सेंकने बैठती, सुध मुई आ जाती-उसकी !

—रोटी है ?

—तब ?

—इतनी जली कौन खायेगा !—खाने वाले की शिकायत

रोटी एक पल तकती।

—जली है न !...जाकर दूसरी दुकान खोज ले। यहाँ तो यही मिलेगी। खाने वाले की कमी नहीं। खाना है तो...

—नाराज होती हो। लो, खा तो रहा हूँ। भला इस दुकान से बढ़िया...

खाने वाला बर्फ बन जाता।

रोटी जलती रही। हर नये वर्ष उसकी प्रतीक्षा होती रही। रोटी जल-जल गई...नई-नई। बड़ी-बड़ी।

खाने वालों की भीड़ बढ़ती गई।

रोटी गर्म हो जाती। रोटी चींखती। रोटी जल जाती...

बड़ी-बड़ी भूखों की टोली खाकर लौट जाती...भरी-भरी!

अच्छी-अच्छी:

सधे हाथों के बीच रोटी...अच्छी-अच्छी !

—एक और दूं ?

—नहीं।

—नहीं ?...अभी खाए ही...

—और खानी भी नहीं है। ऐसी रोटी खाएगा कौन ! खाने वाले को भूख मर जाती।

—रोटी मायूसी से देखती।

—ठंडी है ?

......खाने वाला मुंह सिकोड़ लेता। रोटी सिसक

गई······अच्छी-अच्छी। तवा उदास। बेलन सुस्त। दुकान फीकी-फीकी। चलती भी नहीं। कोई पूछता भी नहीं।···

—एक और दे न !

रोटी चौंक गई।

—बड़ी अच्छी है रे।

रोटी गुदगुदाई।

—सेंक न और।

रोटी को विश्वास नहीं आया। जब जली-जली बनती रही, लोग झिड़की सुन कर भी खाते रहे। जली-कटी पर भी दुकान त्यागते नहीं। परन्तु जब सिकती···अच्छी-अच्छी तो कोई खाता भी नहीं, प्रशंसा रही दूर। मगर आज···

रोटी की खोई-खोई आंखें उठीं। उनमें तैर गया, फिर एक नयापन। नई जिन्दगी। नई हँसी। नई खुमारी।··· और वे लाज से ढंकी-ढंकी लजाने लगीं······परदेस वाला आ गया था जो।

रोटी फूलने लगी······फूलने लगी। तभी बीच में छेद हो गया और वह फूल न सकी।···कल्पना, पर कटे पंक्षी की तरह, धरती पर आ गिरी।······रोटी यथार्थ के हाथों तोड़ दी गई।······'एक, की बात ही क्या ? 'एक' तो सदा ही चापलूस होता है। 'एक' से दुकान नहीं चलती। 'एक' से पेट नहीं चल सकता।······उसकी आँखों में आंसू उतर आए······अब शेष ही क्या है ?···हर नई रोटी को, नया वर्ष डस लेता है। प्रत्येक रोटी को, नया वर्ष निगल जाता है। और फिर बचने के नाम पर बच जाती है··· ··रोटी······ पुरानी-पुरानी; साथ ही पुराना वर्ष······घिसा-घिसा !

सधे हाथों के बीच रोटी······अच्छी-अच्छी, बेलन-चौका के बीच रोटी······अच्छी-अच्छी, तवा-हाथ के बीच रोटी··· परन्तु हाथों में अब झुर्रियाँ पड़ गईं थीं···बूढ़ी-बूढ़ी।

औरत पानी है

हंसमुख सुबह ! नयी जिन्दगी। सभी खुश। केवल सिस्टर जोस्फिन के चेहरे पर उदासी की एक क्षीण रेखा उगी, क्रमशः गहरी होती गई······फिर एक परत बन कर जम गयी। डूबा मन लिए, सिस्टर कान्वेंट के गार्डन में खड़ी थी। एक हाथ में लैटिन में लिखी धर्म पुस्तक; दूसरे में रौजरी। बाहर सड़क पर एक लड़का सीटी बजा कर जा रहा था, उसके पीछे एक कुत्ता भूंकता हुआ भागा। लड़का तेजी से दौड़ गया।

प्रेयर आवर था। मदर बियाट्रीस 'सॉम' गा रही थी।

"दी किंग आँफ लव माई शैफर्ड इज़
हूज़ गुडनेश फैल्थ नेवर,
आई नथिंग लक, इफ आई एम हिज़
एण्ड हो इज़ माइन फॉर एवर,

सिस्टर का मन डूबने लगा—'इफ़ आई एम हिज़, एण्ड ही इज़ माइन फॉर एवर।'

उस समय वह सिस्टर नहीं थी। केवल जोस्फिन सैंड। डैडी प्रीचर थे। जब वे सरमन आंन दी माऊंट, सुनाने लगते, तब लोगों में कितनी गहरी–खामोशी तैर जाती थी। वे रोज प्रीच करने जाया करते, तब वही तो—नाश्ता आदि तैयार कर डैडी की प्रतीक्षा किया करती थी। शाम करीबन पांच बजे के

वह गेट से लग जाती । परन्तु डैडी के आने के पूर्व ही फ्रैड्रिक उस राह से गुजरता करता । नीली जर्सी, ब्राउन बूट,–फील्ड जाने का यही तो मार्ग था, मगर वह कितना बेढंगा है। सलीका से कपड़ा तक नहीं पहनता, बाल नहीं संवारता,··· एकदम केयरलेस ।

उस दिन उसने जिद पकड़ रखी थी। आखिर डैडी की हार हुई । दोनों मैच देखने गए, मुंगेर और भागलपुर के मध्य । खेल प्रारम्भ हुआ······खूब जोरों पर रहा । फ्रैड्रिक भी खेल रहा था। सैन्टर फार्वड । परन्तु दुर्भाग्य, मुंगेर टीम एक गोल से डाउन हो गयी । सुर्र···सुर्र···सीटी पड़ी । हाफ टाइम··· लेमन आवर ।

सोडा पीने सभी बाहर निकले । उसी की कुर्सी के पीछे वो जमा हो गए । फ्रैड्रिक बहुत चिंतित नज़र आ रहा था। उसने अपने दोनों 'विंग्स' को समझाया, फिर हाँफ को··· ।

सुर्र···सुर्र···खेल शुरु हुआ । अभी मुश्किल से खेल पांच मिनट बढ़ा होगा कि एक बाल 'लेफ्ट हाँफ' को मिला । उसने 'राइट इन' को दिया··· उसने 'लेफ्ट आँउट' को और 'विंग' ने बाक्स में फेंका···। चियर अप···चयर अप तभी बिजली की तेजी अख्तियार कर फ्रैड्रिक ने फ्लाइंग शूटिंग ली–नेट और देखते ही देखते उसने तीन गोल बना लिए । मुंगेर वालों के चेहरों से लगा–मुहर्रम डूब गया । एक नई जिन्दगी फिर उगी– खुशी और आत्म सम्मान में घुली-मिली ।

—एकदम पट्ठा है ।

—हां···हां···एकदम शेर है ।

—भई, लाज रख ली मुंगेर की ।

—ये सैन्टर फार्वड है, मुंगेर की नाक है।

खेल समाप्त हुआ···हिप··हिप···हुर्रे।

थ्री चेयर्स फॉर फ्रैड्रिक फोर दी ग्रेन्ड हैट ट्रिक—कॉन-टिन्युअस थ्री स्कोर्स।

जाने क्यों उसे आज फ्रैड्रिक अच्छा लगा। उसे लूसी की बात याद आ गई—'लड़कियाँ केयरलेस ब्यूटी पर जान देती हैं।' उसने देखा फ्रैड्रिक के बाल बिखरे हुए थे, जर्सी पैन्ट से बाहर······। फिर भी उसे ये सब बुरा नहीं लगा, उसने डैडी से कहा—'कितना बेढंगा है फ्रैडी। डैडी ने उठते हुए कहा था—'बेबी, ही इज़ टू केयरलेस'।

फ्रैड्रिक ईसाई था, मगर कैथौलिक और वह भी ईसाई थी, मगर प्रोटेस्टैंट। एक ही जाति में दो तफ़र्का। फ्रैडी आता रहा, बात फिसलती रही और एक दिन महज एक शब्द पर थम गई—'मेरेज'। डैडी ने समझाया बी० ए० कर लो, कोई नौकरी तुम्हें मिल जाये तो लड़की देने में मुझे कोई विरोध नहीं। रिजल्ट 'स्मार्ट' होना चाहिए, बस! विश यू गुड लक माई बाय'। फ्रेडी ने भी एक शर्त रखी। ममी की इच्छा थी कि मैं किसी कैथौलिक से ही विवाह करूं। मेरे लिए नहीं तो कम से कम उस पवित्र आत्मा के लिए ही जोस्फिन को कैथौ-लिक हो जाना चाहिए।

तभी माली आ गया। सिस्टर जरा बगल हो जाईये न। और वह 'कटर' से हेजिंग छांटने लगा, बढ़ी हुई पत्तियाँ कट कर जमीन पर गिरने लगीं···गिरी हुई पत्तियाँ उड़ने लगीं... वह एक बगल हो गयी।

फ्रैडी 'प्लग' कर गया। डैडी ने शादी के लिए नैगेटिव

टर्म अपनाया--'नहीं'।

फिर फ्रैंडी कभी नहीं आया। करीबन एक मास के बाद उसकी एक चिट्ठी आई उसने लिखा था वह नेवी में भर्ती हो गया है। जमीन से दूर उसने पानी की नौकरी पकड़ ली है। मुंगेर के पानी और वहां के पानी में काफी अन्तर है। मुंगेर के पानी में प्यार है, स्नेह है...। परन्तु वहां के पानी में रही सही याद भी घुल जाया करती हैं। क्योंकि एक दूरी बन जाता है---ज़मीन और पानी की। इसीलिए अपनापन स्वयं ही मिट जाता है। 'प्लग' कर गया, इसकी चिन्ता नहीं, हर इन्सान पढ़ने के लिए थोड़े ही बना है। अगर सभी पढ़ने वाले ही हों तो उन पढ़े लिखों को 'इन्टरटेन' करने वाले प्लेयर्स कहां से आयेंगे।

गहरी याद लिए सिस्टर जोस्फिन हर सिंगार के पेड़ के नीचे, बेंच पर आकर बैठ गई। तभी एक सफेद सा फूल उसकी गोद में गिरा। उसे अजीब सा अनुभव होने लगा। एक क्षण उसे लगा फूल सूखा है, उसकी गोद के योग्य नहीं, परन्तु दूसरे ही क्षण उसने अनुभव किया---फूल ताजा है उसमें खुशबू है। उसकी गोद ही उस फूल के योग्य नहीं क्योंकि वह एक सिस्टर की गोद......

'भूलोगे तो नहीं, फ्रैंडी ?' उसने पूछा था, फ्रैंडी ने कहा था---'नो माई हार्ट।' मदर बियाँट्रीस का स्वर खिड़की की राह बह गया---एह नो, ओह नो...नो...। फ्रैंडी ने कहा था, औरत पानी है। पानी मुलायम होता है, दूसरों की प्यास बुझाता है, यह उसका गुण है। परन्तु हर बार 'स्लोप' पाकर बह जाता है......। वह कुछ उदास हो गयी थी। फिर

भी साहस समेट कर उसने कहा था, फ्रैंडी तुम हार्डी हो, और मैं टैस । एक बार जब पानी के बोल में टैस की उंगलियों में अपनी उंगलियां फंसा कर हार्डी ने पूछा—तुम्हारी कितनी और मेरी कितनी उंगलियां ? जानते हो टैस ने क्या कहा था, उसने कहा—मेरी ? नहीं,…नहीं, सारी की सारी उंगलियां तो तुम्हारी ही हैं । अब भी मेरा विश्वास नहीं आता, फ्रैंडी…माई लव । एक बार फिर मदर का स्वर ऊपर आया एह यस्…ओह यस्……।

फ्रैंडी चला गया । परन्तु वह कैथोलिक बन गयी । डैडी ने कितना मना किया—'अब किसके लिए अपने को चेन्ज करती हो ? उसने सहज भाव से कह दिया था—'डैडी, फ्रैंडी की यही तो एक इच्छा थी ।' तभी मदर बियाँट्रीस की आकृति खिड़की पर आयी—'सिस्टर…सिस्टर जोस्फिन, नाव यू शुड कम ।

फ्रैंडी के ख्यालों का साथ छूट गया । सिस्टर उठ कर जाने लगी । मदर बियाँट्रीस कितनी काइन्ड हार्टेड है । परन्तु अन्य नन्स कहती हैं कि मदर मोम और पत्थर की मिक्सचर हैं । इसी शहर के एक आदमी ने अपनी जिन्दगी हार रखी थी, मगर मदर पिघली नहीं ।

चांद की किरणें, कमल का अन्तः छूना चाहती हैं । पर कमल बन्द हो जाता है । और चांद के डूबते ही शबनमी सुबह में, नमी लेकर पंखुड़ियां खुल पड़ती हैं—अभागा चांद… बेदर्द कमल ।

अक्टूबर, नवम्बर, दिसम्बर………और पूरा घूम कर फिर दिसम्बर हो गया । दिसम्बर, जनवरी, फरवरी और

फरवरी भी पूरा घूमकर एक बार पुनः फरवरी हो गया... दो वर्ष ।

मदर कई दिनों से बीमार थी । डाक्टर ने एक शब्द में स्थिति का हवाला दिया—'सीरियस' । मदर के पास से अभी-अभी उठ कर सिस्टर जोस्फिन अपने कमरे आई लाइट ऑन किया । डोली से कुछ निकालकर खाने बैठी । तभी ऊपर वाले हिस्से में दो बिल्लियां लड़ने लगीं । म्याऊँ...माऊँ और लड़ते-लड़ते एक नीचे गिर गई । नर्स चीख पड़ी । सिस्टर मदर के रूम की तरफ भागी ।

मृतक शरीर को गुसल कराया गया । रात भर सिरहाने कैन्डिल जलती रही—सिस्टर्स और नन्स जागती रहीं । सुबह बक्से में रख कर लाश गिरजे को लाई गई । फादर ने होली वाटर छींटा, साँम गाया गया ।

'स्लीप दाई लास्ट स्लीप'
फ्री फ्रौम कैयर एण्ड सौरो,
रैस्ट बेयर नन वीप,
टिल दीं इटर्नल मोरो ।

आगे-आगे गाड़ी में कॉफिन, पीछे-पीछे काले कपड़ों में ग़मगीन फ्यूनर्ल पार्टी । ग्रेवयार्ड में भीड़ थमी । बॉक्स चार कन्धों के सहारे ग्रेव में डाल दिया गया...स्लीप दाई लास्ट स्लीप...एमिन ।

मदर बियाट्रीस को गुजरे लगभग दस दिन हो गए । मोमबती लेकर सिस्टर ग्रेव यार्ड चली । ग्रेव के निकट आकर खड़ी हो गयी । ओवरकोट पहने कोई मदर की कब्र पर

झुका था। 'माई डार्लिंग बीटी...माई लव, ऐट लास्ट यू लेफ्ट मी।' फिर एक दर्द भरी सिसक उठी। सिस्टर को नन्स की बातें याद आई—'मदर मोम और पत्थर की मिक्सचर है। इसी शहर के एक आदमी ने अपनी जिन्दगी हार रखी है, मगर...मदर पिघलती ही नहीं—सिस्टर को उस आदमी से हमदर्दी हो आई। वह उठा। सिस्टर के हाथों में कैन्डिल जल रही थी। सिस्टर जोस्फिन के मुख से केवल इतना शब्द ही निकल सका—औरत पानी है। पानी मुलायम होता है दूसरों की प्यास बुझाता है। यह उसका गुण है। परन्तु हर बार स्लोप पाकर बह जाता है...मैं भी एक औरत हूँ। मगर स्लोप पाकर भी मैं बही नहीं। भले ही पानी में रहने वाले कुछ लोग पानी में रहते-रहते खुद पानी हो गये। और एक आह भरी फूंक से उसने मोमबती बुझा दी। थोड़ी देर के लिए गहरी खामोशी रही और अन्धकार भी। 'तुम ? तुम तो अब सिस्टर हो न, तुम्हें लाइट चाहिए...तब न दूसरों को राह दिखा सकोगी। और उस आदमी ने कैन्डिल जला दी। रोशनी खिल पड़ी और उस रोशनी के सहारे वह कब्रिस्तान से बाहर निकल गया। सिस्टर जोस्फिन ने देखा, दूर बहुत दूर तक रोशनी फैली हुई थी। परन्तु कैन्डिल के नीचे घना अन्धकार था और वह भी उसी अन्धकार में खड़ी थी...।

समाप्त

